

दिशा प्रकाशन

१३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली ११० ०३५

मेरी कहानियाँ

भैरवप्रसाद गुप्त



मूल्य तीस रुपये
सर्वाधिकार लेखक
प्रथम संस्करण 1986
प्रकाशक दिशा प्रकाशन, 138/16, त्रिनगर, दिल्ली 35
आवरण पाली
मुद्रक कमल प्रिंटर्स 9/5866, गांधीनगर दिल्ली 31

Meree Kahaniyan (Hindi Short Stories)
by Bhairav Prasad Gupt *Price Rs 30 00*

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी-50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

भैरवप्रसाद गुप्त की दस चुनिंदा कहानियां

अरमान (कविता संग्रह 1984)

50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

क्रम

मरी कथायात्रा • 9

कवल एक [illegible] • 17

[illegible] • 31

अपरिचित [illegible] • [illegible]

अफसर बीवियाँ और मर मित्र की [illegible] • [illegible]

[illegible] • [illegible]

[illegible] • [illegible]

[illegible] • [illegible]

[illegible] • [illegible]

[illegible] • [illegible]

[illegible] • [illegible]

अरथान (कविता संग्रह 1984)

<0 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मेरी कथायात्रा

एक तरह से अब तक का मेरा पूरा क्रियाशील जीवन कहानी के बीच ही बीता है। ऐसा होगा, यह बचपन में या होश सँभालने के बाद भी मेरे दिमाग में कभी न आया था। बचपन में तो मेरा स्वप्न प्राइमरी स्कूल का अध्यापक बनने का था जो होश सँभालने पर मिडिल स्कूल फिर हाई स्कूल और फिर कालेज का अध्यापक बनने तक विकसित हो गया था। संयोग से मेरा यह स्वप्न पूरा भी हुआ जब 1938 में विश्वविद्यालय छोड़ने के बाद श्री सादिक अली की कृपा से मेरी नियुक्ति दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास के तत्वावधान में संचालित हिंदी प्रचारक महाविद्यालय में हो गयी। उन दिनों कांग्रेस के वरिष्ठ नेता तथा मद्रास प्रांत के प्रथम मुख्यमंत्री श्री राजगोपालाचारी इलाहाबाद कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में सम्मिलित होने आये थे। उन्होंने मद्रास प्रांत में आठवीं कक्षा तक हिंदी की पढ़ाई आवश्यक कर दी थी और उसके लिए अध्यापक दीक्षित करने के निमित्त यह महाविद्यालय खोला था। उन्हें एक ऐसे अध्यापक की भी आवश्यकता थी जो हिंदी के साथ उर्दू भी पढ़ा सके। उन्होंने सादिक अली साहब से जो उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के कार्यालय में काम कर रहे थे कहा तो सादिक अली साहब की नजर मुझ पर पड़ी।

उस समय वे हम कुछ विद्यार्थियों के एक मकान में ही रहते थे। उन्होंने कहा—तुम्हें कोई सरकारी नौकरी तो करनी नहीं। राजाजी के साथ चले जाओ। आदमी को ऐसा ही काम करना चाहिए जिसमें गुजारे के साथ देश की भी कोई सेवा हो।

उनकी यह बात आज भी मेरे मन में गुरु मंत्र की तरह गूंजती रहती है और मेरा मार्ग दर्शन करती है। गांधी इस 'सेवा' का चरित्र कालांतर में सुधारवादी से समाजवादी क्रांतिकारी में बदलता गया। 1942 का आंदोलन न चला होता तो मैं शायद अध्यापक ही बना रहता। 1940 के अंत में मुझे राजाजी के आदेश पर ही त्रिचनापल्ली भेजा गया वहां आल इंडिया रेडियो से लेसंस इन हिंदुस्तानी का कार्यक्रम चलाने के लिए। हिंदुस्तानी भाषा के व्यापक प्रचार के लिए आल इंडिया रेडियो से यह कार्यक्रम राजाजी ने ही शुरू कराया था। यह कार्यक्रम रोज दोपहर को एक बजे से एक बजकर दस मिनट तक होता था। शेष समय मैं होली क्रास वीमंस कालेज और नेशनल कॉलेज में जहां हिंदी को एक ऐच्छिक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में पहला बार सम्मिलित किया गया था प्रथम यूनिवर्सिटी कक्षाओं को पढ़ाता था साथ ही दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सभा त्रिचनापल्ली द्वारा संचालित राष्ट्रभाषा-कक्षाओं को भी लेता था। यही सिलसिला जुलाई 1942 तक चलता रहा। लेकिन अगस्त में सब उलट पुलट गया।

मेरे क्रियाशील जीवन की यही शुरुआत थी। कविता और कहानी तो मैं यों ही बहुत पहले से लिखता आ रहा था। मेरी पहली कहानी रूमाल बलिया के साप्ताहिक संसार में 1934 में जब मैं वहीं गवर्नमेंट हाई स्कूल में नवीं कक्षा में पढ़ रहा था छपी थी। तब से बराबर विद्यार्थी जीवन में, फिर मद्रास और त्रिचनापल्ली में भी लिखता रहा था। मैं सौभाग्यशाली था कि संपादकों से बराबर मुझे प्रोत्साहन मिलता रहा और उसी जमाने में मेरी कहानियां विशाल भारत विश्वामित्र (मासिक) कहानी आदि स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। देश प्रेम त्याग बलिदान, अछूतोद्धार सांप्रदायिक एकता सामाजिक सुधार प्रेम आदि उनके विषय होते थे और उनका आधार सुनी हुई या स्वयं देखी हुई या भोगी हुई घटनाएं होता था। उनका परिवेश ग्रामीण होता था जिसमें मेरा संस्कार बना

प्रस्थान (कविता संग्रह 1934)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

था और जिसके विवरणा के प्रति मैं आश्वस्त था। उस समय मुझे कहानी कला या शिल्प का कोई ज्ञान या समझ न थी केवल सहज ज्ञान से कहानी गढ़ लेन की मैं कोशिश करता था। हाँ, भाषा पर मेरा ध्यान अवश्य था। उस पर खूब मेहनत करता था और जहाँ जरूरी समझता था अपनी मात भाषा भोजपुरी के शब्दों और मुहावरों का धड़ल्ले से उपयोग करता था। उर्दू के शब्दों और मुहावरों का भी खूब उपयोग करता था। इसी भाषा से मेरी एक अलग पहचान बनी। ऐसा भी मेरा खयाल है कि इसी भाषा के बल पर मेरी कहानियाँ खडी होती थी और सपादको को भाती भी थी। उस जमाने की मेरी कहानियाँ मोहब्बत की राहें' फरिश्ता' मजिल' बलिदान की कहानियाँ' और बिगडे हुए दिमाग' सग्रहो मे प्रकाशित हुई हैं।

अगस्त, 1942 म अचानक सब उलट-पुलट गया। जीवन को जो मन चाहा पथ मिल गया था, वह रुद्ध हो गया। घर से पत्र पाकर मैं गाँव पहुँचा। चौपट खुले घर म अकेली माँ मिली। उसने रोते हुए हमारे परिवार क सवनाश की कहानी सुनायी। घर के सभी लोग फरार थे। सिपाहियो और सीगिया ने घर को लूट लिया था। माल मता ही नही दरवाजा व किवाड पलग बिस्तर और बरतन तक उठा ले गये थे। बाहर दीवार पर नोटिस चिपकी थी कि पद्रह दिन के अदर राधाकृष्ण (मेरे बडे भाई) थाने म हाजिर न हुआ, तो मकान नीलाम कर दिया जायेगा। माँ न मुझे एक रात घर म न रहने दिया। उसन मुझे कही भी चले जाने को कहा क्योकि उसे भय था कि मैं ठहरा तो पकडा जाऊँगा। मैं कानपुर पहुचा। वहाँ भी स्टेशन और सडको पर विनाश के दृश्य देखन को मिले। उस समय बहुत सारे फरार लोग कानपुर म जमा थे जिनका जमावडा रात म मजदूरो के नेता अर्जुन अरोडा के यहाँ होता। वहाँ मुझे भारत छोडो' आदोलन तथा द्वितीय महायुद्ध के सबध म कुछ एकदम नयी बातें सुनने को मिली। उनका कहना था कि 22 जून 1941 स जब हिटलर न सोवियत रूस पर आक्रमण कर दिया था, महायुद्ध का चरित्र बदल गया था। अब वह जमन फासिज्म और यूरोप के पूँजीवादी दशा के बीच युद्ध न रहकर जमन फासिज्म और जापानी सैन्यवाद की धुरी शक्तियो तथा सोवियत रूस के समाजवाद तथा अमरिका इगलैंड के पूजीवादी लोकतत्र की मित्र शक्तियों के बीच हो गया था।

अब इस युद्ध म यदि मित्र शक्तियो की हार हुई, तो विश्व मानव का भविष्य खतरे म पड जायेगा विश्व सभ्यता का विनाश हो जायगा लोकतत्र का नाम निशान मिट जायगा और विश्व समाजवादी क्रान्ति की उपलब्धियाँ नष्ट कर दी जायेंगी और इनकी जगह पूरे विश्व म फासिज्म तथा सैन्यवाद का बोलबाला हो जायगा। इस स्थिति म लोकतत्र तथा समाजवाद म विश्वास रखने वाले विश्व क प्रत्येक मनुष्य का प्रथम कर्तव्य था कि वह मानव क भविष्य के लिए समाजवाद की रक्षा के लिए तथा विश्व सभ्यता की रक्षा क लिए मित्र शक्तियो की हर प्रकार की सहायता कर उन्हे विजयी बनाने और धुरी शक्तियो के फासिज्म और सैन्यवाद को पराजित करने की कोशिश करे। भारत के साथ सभी उपनिवेशो का आजादी की लडाई म सफलता मिले इसके लिए फासिज्म तथा सैन्यवाद को पराजित करना आवश्यक था। एस म भारत छोडो आन्दोलन छेडना मित्र शक्तियो के विरुद्ध धुरी शक्तियो की सहायता करना था और खुद अपने पावो म कुल्हाडी मारने की तरह था। युद्ध क इस स्वभाव की समझ कितनी सही थी युद्धोपरात सोवियत रूस की महान विजय तथा जर्मन फासिज्म और जापानी सैन्यवाद के पराभव स सिद्ध हो गया। विश्व म समाजवाद की प्रतिष्ठा बढ गया और साम्राज्यवाद की रीढ टूट गयी। पूर्वी यूरोप क सभी देशो म समाजवादी शासन कायम हो गया और चीन कोरिया और क्यूबा म समाजवादी क्रान्ति सफल हो गयी। एशिया और अफ्रीका क प्राय सभी उपनिवेश भारत बर्मा इन्डोनेशिया श्रीलका सीरिया वियतनाम लाओस कम्बोडिया आदि एक एक कर स्वतत्र हो गये।

इस दौर म मेरी कहानियो का विषय युद्ध किसान मजदूर सघर्ष सामती तथा पूजीवादी शोषण था। गाधीवाद के सुधारवाद पर स मेरी आस्था उठ गयी थी और मेरा लेखन समाजवादी क्रान्ति के लिए समर्पित हो गया था। इस दौर की मेरी कहानियाँ 'महफिल सपने का अत और सितार के तार सग्रहो म हैं। ये कहानियाँ तथ्यात्मक तथा घटनात्मक हैं। धनात्मक नायक खडा करना इनका उद्देश्य है जो पाठको को प्रभावित तथा उत्प्रेरित कर सके। इनका आधार कानपुर के मजदूरो का जीवन और सघर्ष तथा गाँवो के किसानो का जीवन और सघर्ष है। कानपुर म पहला

7

प्रस्थान (कविता सग्रह 1984)

सी 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

बार मुझे मजदूरों के साथ रहने और काम करने का अवसर मिला था। अरोड़ा के माध्यम से ही वहाँ मुझे पहले सेंट्रल आर्डिनेंस डिपो और फिर बेग सदरलैंड में नौकरी मिल गयी थी।

इस दौर के बाद ही मैंने अचानक एक अनजान, अकल्पित कार्य क्षेत्र में प्रवेश किया। यह कहानी का संसार था जिसकी कोई समझ, इतने दिनों से कहानियाँ लिखते-पढ़ते रहने के बावजूद, मुझे नहीं थी। एक विज्ञापन देखकर मैंने आवेदन-पत्र भेज दिया था। वहाँ से साक्षात्कार का पत्र आया तो मैं चकित रह गया। शायद मेरे कहानी लेखन ने ही अपना प्रभाव दिखाया था। साक्षात्कार के बाद मुझे तुरंत नियुक्ति पत्र मिल गया तो मैं सहम उठा कि कैसे करूँगा कहानी पत्रिका का संपादन, जिसका मुझे कोई अनुभव ही न था।

जून 1945 में मैंने माया प्रेस इलाहाबाद के संपादन विभाग में काम करना शुरू किया। उस समय वहाँ से कहानियों की दो पत्रिकाएं माया' और मनोहर कहानियाँ निकलती थीं। मेरे सौभाग्य से मेरी नियुक्ति के एक दिन पहले वहाँ राजेश्वर प्रसाद सिंह की नियुक्ति हुई थी। ये प्रेमचंद के समकालीन कहानीकार और हिंदी अंग्रेजी के अनुभवी पत्रकार थे। इनका सान्निध्य तथा सहानुभूति पाकर मैं कुछ आश्वस्त हुआ।

स्वभाव और आदत से मैं परिश्रमी था। अब कहानी न यों ही पढ़ी जा सकती थी न लिखी जा सकती थी जैसा कि मैं अब तक करता आया था। अब तो कहानी मेरे जीवन का प्रमुख कार्य बन गयी थी। उसे अब ठीक से समझना जरूरी था। उसका इतिहास उसका विकास क्रम, उसकी रचना, उसका ढाँचा, उसकी कला, उसका शिल्प, उसका उद्देश्य और साहित्य में उसकी विशेष भूमिका। एक संपादक की हैसियत से मेरे ऊपर बड़ी भारी जिम्मेदारी थी और इस जिम्मेदारी को ईमानदारी से पूरा करने के लिए जरूरी था कि मैं सबसे पहले यह समझूँ कि यह जिम्मेदारी थी क्या? गजानन्द बाबू ने शुरू में ही कामों का बंटवारा करते हुए मेरे जिम्मे कहानियों का चयन करना और कहानीकारों तथा पाठकों से पत्राचार सौंपा और अपने जिम्मे कहानियों की पाण्डुलिपियों का संपादन रखा। सभी पुराने कहानीकारों के साथ जीवंत तथा सौहार्द्रपूर्ण संबंध बनाए मेरे

कर्तव्य था। साथ ही किसी भी कहानीकार की कहानी के साथ अन्याय न हो इसके लिए जरूरी था कि मैं समझूँ कि अच्छी या श्रेष्ठ कहानी की कसौटी क्या होनी चाहिए। इसके लिए मैंने दुनिया की श्रेष्ठ कहानियों का अध्ययन करना जरूरी समझा। मैं खोज खोजकर दुनिया के उस्ताद कहानीकारों के संग्रहों को पढ़ने लगा। फिर वर्ल्ड बेस्ट शार्ट स्टोरीज के सभी भागों को भी धीरे धीरे पढ़ गया। इससे मोटे रूप में श्रेष्ठ कहानी का एक मान दंड मेरे मन में बन गया। मेरी चुनी हुई कहानियों की पांडुलिपियों का संशोधन करते समय राजेश्वर जब उनकी तारीफ करते, तो मुझे खुशी होती कि चुनाव ठीक हो रहा था। कुछ ही महीनों बाद जब पत्रिका की लेखकों के बीच प्रतिष्ठा और उसका सर्कुलेशन तेजी से बढ़ने लगा, तो यह विश्वास हो गया कि काम ठीक हो रहा था।

इन सब कार्यों से व्यक्तिगत रूप से मेरे कहानीकार को भी बड़ा लाभ पहुँचा। एक कहानीकार की हैसियत से मेरा यह तीसरा विकास चरण था। अब मेरी रचना प्रक्रिया सहज न होकर बड़ी जटिल हो गयी। पहले की तरह अब मैं तेजी से कहानियाँ न लिख पाता। कहानी लिखना मेरे लिए बड़ा कठिन तथा श्रमसाध्य हो गया। एक एक शब्द, एक एक वाक्य में मुझे संघर्ष करना पड़ता, हर नोक पलक संवारना पड़ता और पूरी कोशिश करता कि कहानी में कोई भी कुकस न रह जाये। इस दौर की मेरी कहानियाँ 'ऑंखों का सवाल' 'मंगली की टिकुली' और 'आप क्या कर रहे हैं?' कहानी संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। वह सिलसिला अब भी जारी है।

1954 में माया छोड़कर मैंने 'कहानी' का संपादन शुरू किया। मैंने छह वर्ष तक 'कहानी' का और फिर तीन वर्ष तक 'नयी कहानी' का संपादन किया। इस अर्से में हिंदी कहानी-क्षेत्र में जो और जितना काम हुआ, वह और उतना काम पहले कभी भी न हुआ था। हिंदी कहानी के इतिहास में यह 'नयी कहानी' का युग माना जाता है। 'कहानी' पत्रिका के माध्यम से नयी कहानी आन्दोलन का प्रवर्तन कर उसे 'नयी कहानी' पत्रिका के मंच से (दस वर्षों में) विकास के चरम बिंदु तक पहुँचाने का काय मैंने किया। इस आन्दोलन ने नये कहानीकारों की एक पंक्ति खड़ी कर दी। हिन्दी की कितनी ही श्रेष्ठ कहानियों की रचना इस युग में हुई। कहानी की एक

कथानिक समीक्षा-मूल्यांकन-पद्धति का सूत्रपात भी किया गया। इस दौर में कहानी पर इतनी चर्चा और इतना विवाद हुआ कि वह पूरे हिंदी साहित्य पर छा गयी और साहित्य के इतिहासकारों और आलोचकों ने स्वीकार किया कि इस युग में कहानी कविता को हाशिये पर ढकेलकर स्वयं साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित हो गयी। 'कहानी' के विशेषांक आज भी कहानी इतिहास के बहुमूल्य दस्तावेजों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। नयी कहानी आंदोलन ने कहानी को एक नया रूप-वस्तु कलाशिल्प तथा भाषा मुहावरा दिया जिससे वह साहित्य में एक गंभीर विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई और उसके आगे के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। आज कहानी जो इतनी लोकप्रिय है उसका बहुत बड़ा श्रेय नयी कहानी आंदोलन को ही है।

1964 के शुरू में मैंने संपादन से हमेशा के लिए अवकाश ले लिया। इसका कारण यह था कि अब प्रकाशकों की मनोवृत्ति शुद्ध रूप से व्यावसायिक तथा पूंजीवादी हो गयी थी और उनके साथ किसी भी वगचेता संपादक के लिए स्वतंत्रतापूर्वक काम करना असंभव हो गया था। साहित्यिक पत्रिकाओं के नाम पर आजकल केवल लघु पत्रिकाएं रह गयी हैं अब उन्हीं के लिए मैं कहानियां लिखता हूं।

इस संकलन में मेरी दस कहानियां हैं। चयन में किसी क्रम का ध्यान में नहीं रखा गया है। फिर भी ये मेरी कहानियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

—भैरवप्रसाद गुप्त

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984) 9517
मा ५0 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

केवल एक दिन के लिए

जनवरी का महीना था। आकाश मेघाच्छन्न था। तेज ठंडी हवा चल रही थी। कभी-कभी ओले पड़ जाने के कारण थर्मामीटर का पारा बहुत नीचे चला गया था। शहर के बाहर एक कच्ची, ऊँची नीची सड़क पर कई अधनंगे, दुबले पतले, काले कलूटे आदमी एक अरथी लिये हुए जा रहे थे जिस पर मारकीन की एक चादर पड़ी हुई थी। अरथी के साथ साथ एक आदमी सिर झुकाये हुए चल रहा था। उसकी आयु तीस की होगी। वह पाँव पाँव चलकर ही एक रिक्शा खींच रहा था। रिक्शा पर पाँच बच्चे बैठे, लेटे और अधलेटे थे। उन पर एक पुरानी अधफटी मैली चादर पड़ी थी। किसी बच्चे का हाथ या पाँव चादर के बाहर निकल जाता तो वह आदमी चलते हुए ही चादर खींचकर उसे ढँक देता।

यह अरथी उन बच्चों की माँ की थी। जो रिक्शा खींच रहा था, वह उनका बाप बाधा था। सुबह जब बच्चों की आँखें खुली थीं, तो उन्होंने देखा था कि उनकी कोठरी लोगों से भरी हुई है, माँ जमीन पर लेटी है और बाप उसका एक हाथ पकड़े रो रहा है। बाप को रोते देखकर सबसे छोटा बच्चा मुँह फाड़कर रोने लगा था और उसके बाद एक एक कर सब बच्चे रोने लगे थे। औरतों ने उन्हें सँभालने की कोशिश की थी तो वे हाथ-पाँव

पटककर उनके हाथो से छिटककर और भी पुक्का फाड़ फाड़कर रोने लगे थे। किसी औरत ने लाकर उन्हें रोटी के टुकड़े थमाये थे तो उन्होंने उन्हें फेंक दिया था। छोटा रेंगकर माँ के पास पहुंचकर उसकी छाती की ओर हाथ बढ़ा ही रहा था कि एक औरत जबदस्ती उसे उठाकर कमरे से बाहर चली गयी थी और बोधा अपनी छाती पर घूंसा मारकर जमीन पर गिर पड़ा था और बच्चे माँ और बाप की देह पर चीखते हुए लोट पोट गये थे।

कई लोगो ने मिलकर तब बोधा को उठाया था। एक बूढ़े ने कहा था, बोधा सभालो अपने को। इस तरह तुम दम छोड़ दोगे तो इन बच्चो का क्या होगा ?

बोधा कुहनियो में सिर गाड़कर बैठ गया था बच्चे उसकी पीठ पर उसकी अगल बगल और सामने खड़े-बैठे रो रहे थे। लोगो ने ही अर्थी की व्यवस्था की थी। अरथी उठी थी तो बोधा भी साथ चलने को उठ खड़ा हुआ था। बच्चे माँ माँ चीख रहे थे। वे किसी से भी किसी तरह मान ही नहीं रहे थे। रो रहे थे और जमीन पर बिखर बिखरकर हाथ पाव पटक रहे थे। बोधा ने उनकी यह हालत देखी थी तो उससे न रहा गया था। उसने कोठरी के दरवाजे की बगल में खड़े अपने रिक्शे पर उन्हें बैठा लिया था। एक औरत ने उसकी फटी पुरानी चादर लाकर बच्चो पर डाल दी थी कि बच्चे ठंड से बचे रहे।

बच्चे चुप हो गये थे। उन्हें लगा था कि बापू उन्हें रिक्शे पर बैठाकर बाजार ले जा रहा है। कभी-कभी किसी मेले-ठेले के दिन बोधा अच्छी कमाई करता था तो बच्चो को अपने रिक्शे पर बैठाकर बाजार ले जाता था और उनके लिए कुछ खिलौने और मिठाइयाँ खरीद देता था। बादलो के कारण अधेरा सा छा रहा था। रिक्शे पर लेटे लेटे बच्चो को नींद आ गयी।

बच्चो की नींद खुली तो वे सड़क के किनारे एक बरगद के पेड़ के नीचे जमीन पर लेटे हुए थे। उनके बाप ने उन्हें फिर रिक्शे पर बैठा लिया। वे घर आये। कोठरी में आते ही छोटा बच्चा माँ माँ पुकारने लगा और उसे न पाकर रोने लगा। उस रात हुमक हुमककर दूसरे बच्चे भी रोते रहे। कोठरी में अंधेरा था। बाप दरवाजे के पास सिर झुकाए हुए खड़ा था,

प्रस्थान (कविता संग्रह 1954)

मा 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

उसकी आंखों में आंसू थे।

एक औरत के न रहने से बोधा का घर उजड़ गया। दो चार दिन तक पास पड़ोस के लोगों ने उसकी और उसके बच्चों की थोड़ी बहुत चिंता की। कई औरतों ने अपने अपने घर से रोटियां लाकर उन्हें दीं। उसका छोटा बच्चा सबसे ज्यादा रोता था, उसे औरतों ने अपने अपने घर ले जाकर बहलाने की कोशिश की, एक औरत ने तो उसे अपना दूध भी एक-दो दिन पिलाया। लेकिन यह सब भी दो चार दिन ही चला। गरीबों की सहानुभूति का स्रोत सूखने में देर ही कितनी लगती है। बेचारे बोधा के लिए अर्धांग के दस दिन भी काटने मुश्किल हो गए।

ग्यारहवें दिन सुबह वह बच्चों को कोठरी में छोड़कर रिक्शा के मालिक के यहां पहुंचा और रिक्शा मांगा। रिक्शा तो उसे मिल गया, लेकिन वह रिक्शा लेकर आगे बढ़ा तो उसे बहुत कमजोरी महसूस हुई। पहले बच्चों का पेट भरने के लिए वह सोलह सोलह घंटे रिक्शा चलाता था। थकता तो था लेकिन कभी भी ऐसी कमजोरी महसूस न हुई। उसे आज सहसा ही लगा कि अब वह वैसी कमाई न कर सकेगा। फिर भी वह पीछे न हटा। उस हालत में भी पूरा दम लगाकर उसने रिक्शा चलाया।

दोपहर को वह सत्तू लेकर अपनी कोठरी पर पहुंचा, तो कोठरी के बाहर ही बच्चों को रोते हुए पाया। सबसे छोटा तो धूप में बेदम पड़ा हुआ था। उसने उसे उठाकर झाड़ा पोंछा, दूसरे बच्चों को भी संभाला और कोठरी में लाया। सत्तू सानकर बड़े बच्चे के आगे थाली रखकर उन्हें खाने को कहा और छोटे के लिए दूध लेने बाजार चला गया।

लौटकर देखा तो बच्चों ने थाली साफ कर दी थी और उसे देखते ही वे और मांगने लगे। उनकी बात की ओर ध्यान न दे वह छोटे को दूध पिलाने लगा। छोटा हुबक हुबक कर जरा देर में ही दूध पी गया और मां मां बिलखने लगा। थोड़ी देर तक बोधा ने उसे पुचकारा, लेकिन उसकी रुलाई बढ़ती ही गयी तो उसका दिमाग खराब हो गया। वह उसे उसी तरह बिलबिलाते हुए छोड़कर बाहर आया और रिक्शा ले सड़क पर आ गया।

उसने कुल पांच रुपये की कमाई की थी। चार रुपये का एक किलो सत्तू खरीदा था कि कुछ वह खायेगा और कुछ बच्चे खायेंगे, लेकिन यहां

बच्चे ही मर चट कर गय थ। बच एक रुपय का वह एक पाव दूध लाया जो छोटे बच्चे क लिए पूरा भी न पडा था। भूखा बाधा सोच रहा था कि अब वह क्या क्या कर? कुछ खाया नही तो रिक्शा कसे खींचा जायगा? लकिन खाय कहा स? उसन सोचा, पहली सवारी म जो पस मिलेंग उससे कुछ खरीदकर खा लगा। फिर रिक्शा चलायगा।

लकिन उसन कुछ भी न खाया और खाली पेट रिक्शा खीचता रहा। सोचा कि शाम को रोटी सककर इकट्ठे ही खा लग।

शाम को पाच बज उसन रिक्शा जमा किया और रिक्शे का तीन रुपया किराया जमा करने क बाद उसक पास कुल सात रुपय बच गय। अब वह सोचन लगा कि इनम स कितने का आटा खरीद और कितने का छोटे बच्चे क लिए दूध खरीद? वह बच्चे क लिए कुछ ज्यादा दूध खरीदना चाहता था लकिन इसम आट म कमी करनी पडती थी। दूकानदार का पहल ही काफी पसा चढ गया था। दस दिन की बठकी म उसस उधार ल लकर ही खाया यार बच्चो को खिलाया था। उसन सोचा कि किसी दूसरे दूकानदार स थोडा उधार करक डड किलो आटा ल ल। लकिन फिर वह डर गया कि कहा यह बात उसके दूकानदार को मालूम हो गयी, तो वह फजीहत करक रख देगा। हार पछता कर वह अपन ही दूकानदार क पास पहुचा और सात रुपय उसक हाथ म धर दिए। बोला आज की यही कमाई है। दोपहर को जो सत्तू ल गया था वह बच्चो को ही पूरा न पडा। दिन भर का भूखा हू।

रात को रिक्शा नही चलाओग? दूकानदार न पूछा।

दम नही है बोधा बोला थोडा दम आ जाय तो लगा।

कस दम आयगा? दूकानदार बोला, आजकल के जमान म छह छह प्राणी दो घटा एक पाली रिक्शा चलाकर तुम कस पूरा करोग? क्या खुद खाओग क्या बच्चो को खिलाओग और कस बाकी उधार भरोग?

भगवान चलायग थोड दिन और तुम मरी मदद कर दो बोधा न हाथ जोडकर कहा।

भाई हम भी किसी का दना होता है दूकानदार बोला आजकल उधार दन का जमाना नही है। वह तो तुम्हार ऊपर विपत्ति पडी थी तो

9517

प्रस्थान (कविता संग्रह 1934)
मो ५० मोहनलाल, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हमने किसी तरह तुम्हारी मदद कर दी। करीब सत्तर रुपये तुम पर चढ गये हैं। अगर थोड़ा थोड़ा भी तुम रोज न भरोगे तो कैसे काम चलेगा? इन सात रुपये में हम तुम्हें क्या दें और क्या काटें? तुम्हीं बताओ?

डेढ़ किलो आटा ले लेता हूं इस वक्त मैं भी थोड़ा अपने पेट में डाल लेता। पिघियाकर बोधा बोला।

'डेढ़ किलो आटे के साढ़े चार रुपये हुए बाधा। दूकानदार बोला फिर सूखी रोटी तो खायी न जायगी, पाव भर दाल चाहिए या आलू चाहिए।'

जो ठीक समझें दे दो महाजन। बोधा सिर खुजाकर बोला 'कल से जितना होगा पाली चलाने की कोशिश करेंगे।

तो बस आज ले लेते हैं। दूकानदार वाला कल से मुझे कुछ मत कहना।

इसी वक्त हाथ जोड़कर बोधा ने स्वीकार कर लिया।

आटा आलू लकड़ी और मिर्चा लेकर बोधा गिड़गिड़ाकर बोला महाजन कुछ पैसे दे देते तो छोटे वाले बच्चे के लिए थोड़ा दूध ले लेता।

बच्चे को दूध पिलाने से तुम्हारा गुजारा होगा बोधा! दूकानदार बोला अरे भाई पानी में रोटी का पपरा भिगोकर खिलाओ दाल का पानी पिलाओ। 50 ग्राम दूध पिला भी दो तो उससे उसका क्या बनेगा?

तीन महीने का बच्चा है बाधा फिर भी गिड़गिड़ाया।

तो क्या हुआ? दूकानदार बोला माँ थी तो उसे अपना दूध पिलाती थी अब तुम कहाँ से दूध पिलाओगे? पिला सको तो जरूर पिलाओ मैं नहीं रोकता हूँ।

बोधा सामान लेकर चला आया। कोठरी के दरवाजे पर बच्चे बैठे ठिठर रहे थे। उनमें छोटे को न पाकर बोधा ने बड़े से पूछा छोटा कहाँ है भैया?'

बड़े ने बताया, वह अन्दर में सोया पड़ा है।

बोधा कोठरी में घुसा। सामान जमीन पर रखकर अंधेरे में टटोलकर ढिबरी जलाई। झुककर छोटे को उठाया तो पाया कि उसकी देह तप रही थी। बच्चा बुखार में बुन था।

और उसके उसने बड़े बच्चे से पूछा 'यह कब से या पड़ा है ?'

बड़ा बच्चा सहमकर बोला मैंने इसे खिलाने की बहुत कोशिश की, लेकिन यह चुप ही नहीं हो रहा था। रोते रोते आप ही आप सो गया।

बोधा परेशान हो उठा। बच्चे को गोद में लेकर हिलाया-डुलाया, लेकिन उसने न तो आँखें खोलीं और न रोया ही। घर घर उसकी सांस बोल रही थी।

बाकी बच्चे सहमे हुए उसके पास ही खड़े थे। उन्हें भूख लगी थी लेकिन डर के मारे उन्होंने बाप से रोटी नहीं मांगी। बोधा ने चादर बिछाकर उस पर बच्चे को लिटा दिया और उस अँगोछी से ढक दिया। बड़े बच्चे से बोला 'दौड़कर लोटे में पानी ला।'

बड़ा पानी लेने जाने लगा तो उसे रोककर बोला रहने दे। मैं घड़े में पानी लाता हूं। तू छोटे के पास बैठ।

वह सड़क के धबे पर गया। हाथ मुंह धोए और घड़े में पानी भरके ले आया।

लौटकर उसने देखा कि दूसरे बच्चे भी जमीन पर लेट गये थे। उसने बड़े को पुकारकर कहा उठकर चूल्हा जला मैं आटा गूंधता हूं।

बड़ा पेट को हाथ से दबाये हुए उठ खड़ा हुआ। कोठरी से बाहर जा उसने चूल्हे की ईंटों को जोड़ा। फिर अंदर आ उसने बाप से पूछा बापू ढिबरी से लकड़ी पर थोड़ा तेल डाल लूं।

उसमें तेल कहां होगा बोधा बोला आज तो लाये नहीं। पड़ोस से आग मांग ला।

लड़का पड़ोस से आग मांग लाया और चूल्हे में उसे रखकर उस पर लकड़ियाँ चुनकर मुंह से फूंकने लगा। लकड़ियाँ पतली पतली थीं, लेकिन भीगी थीं। धुएं के कारण उसकी आँखों से आँसू चूने लगे।

बोधा पानी में गुँधा हुआ आटा और तवा लेकर चूल्हे के पास आ गया। चूल्हे पर तवा रखकर वह भी चूल्हा फूंकने लगा। बड़े से कहा तू आलू उठा ला।

लकड़ियाँ आग पकड़ती थीं लेकिन फूंकना बंद करते ही बुझकर फिर धुआँ उगलने लगती थीं। बड़ा लड़का आलू ले आया तो बोधा ने उन्

(1981)
परवान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

चूल्हे में पकने के लिए डाल दिया।

किसी तरह कच्ची पक्की रोटियाँ सेंकने में भी बड़ी देर हो गयी। बड़ा चूल्हे के पास जमीन पर बैठा टुकुर टुकुर ताक रहा था या बाप के कहने से आग फूँक रहा था। बाकी बच्चे कोठरी में सो गये थे।

'जाओ सबको बुला लाओ' बाधा ने कच्चे पके आलुओं को थाली में मीसते हुए कहा, 'नमक और मिर्च भी लेते आओ ताक में रखे हैं।'

बच्चे आकर थाली के चारों ओर बैठ गये और जल्दी जल्दी रोटी तोड़ तोड़कर खाने लगे। बाधा उन्हें खाते हुए देखता रहा और रोटियों के छिलके उतारता रहा। थोड़े छिलके उतार लिए तो उन्हें हथेली पर रखकर उसने पानी में भिगोया और उठकर कोठरी में चला गया।

छोटे को गोद में लेकर उसने छिलके का एक टुकड़ा उसके होठों पर रखा। लेकिन उसके होठों में कोई हरकत न हुई। बाधा ने उसे थोड़ा हिलाया डुलाया। फिर भी कोई हरकत न हुई। बाधा को लगा कि उसकी गोद बच्चे के ताप से जल रही है। उसने फिर उसे लिटा दिया।

बाहर आया तो देखा कि चूल्हे के पास कोई भी बच्चा नहीं है और थाली खाली पड़ी है। बाधा के बदन में आग लग गयी। उसके मुँह से सहसा निकल गया 'शैतानों ने इस बच्चे भी मेरे लिए कुछ नहीं छोड़ा। हे भगवान!'

उसने पड़ोस की कोठरी के सामने जाकर पुकारा, 'अरे मंगल! सो गये क्या भाई?'

अन्दर से मंगल की औरत बोली 'वो तो रिक्शा लेकर गये हैं। क्या बात है?'

'अरी मंगल की बहू!' बाधा बोला, 'छोटे को तेज बुखार है जरा तुम आकर देखना।'

'अब सुबह देखेंगे' मंगल की औरत कोठरी के अन्दर से ही बोली 'मेरी भी तबीयत ठीक नहीं है।'

बाधा ने सोचा कि और आगे बढ़कर किसी से कहे लेकिन उसके पाँव आगे न बढ़े। उसे लगा कि इस समय उसकी कोई भी मदद नहीं करेगा।

वह अपनी कोठरी में लौट आया। ठंड से काँपते हुए उसने जमीन पर

पड़े हुए थे। खुले दरवाजे से सन सन ठंडी हवा के झोंके अंदर आ रहे थे। बोधा ने दरवाजा बंद कर लिया। घड़े से लोटे में डालकर पानी पिया। छोटे बच्चे को गोद में लेकर उसने चादर उठाकर बच्चों पर डाल दी और छोटे को अंगोछी से ढककर उसे गोद में लिए ही जमीन पर लुढ़क गया।

उस ठंडक में भी बच्चे के शरीर से जैसे आग की लपटें निकल रही थीं। बोधा के पेट में भी एक आग जल रही थी। उसे नींद कहां आनी थी। वह सोचने लगा कि इस तरह से कितने दिन कटेंगे? दिन भर रात भर का भूखा मैं कल रिक्शा कैसे चलाऊंगा? न चला पाऊंगा तो क्या होगा वह चुप चुप रोने लगा। उसे अपनी औरत की याद आने लगी वह उसे पहले रोटी खिलाती थी और हठ करके ज्यादा खिलाती थी। कहती थी तुम थककर दिन रात रिक्शा खींचते हो भरपेट खाओगे नहीं तो कैसे काम होगा?

बोधा और भी जोर से रोने लगा। मुंह से रुलाई की आवाज न फूटे इसलिए उसने मुंह में अंगोछी का कोना ठूंस लिया।

सुबह हुई तो किसी तरह वह उठा। गोद में बच्चे की सांस फूल रही थी। उसने सोचा कि इसे पड़ोस में किसी के पास छोड़कर काम पर चला जाय और दोपहर तक कुछ कमाकर बच्चे के लिए दवा और दूध लाये। मंगल की कोठरी के आगे सुदई की कोठरी के सामने रुककर उसने पुकारा अरे सुदई भा!

कोठरी के दरवाजे पर आकर सुदई की औरत बोली वो तो अड्डे पर रिक्शा लेकर गये हैं। क्या बात है?

गोद के बच्चे को दिखाते हुए बोधा बोला इसकी तबीयत खराब है। जरा तुम इसे अपने पास रख लेती तो मैं दो चार घंटे रिक्शा खींच आता।

मैं तो लाइन पर कोयला बीनने जा रही हूं सुदई की औरत बोली खाली मरद की कमाई से पांच प्राणियों के पेट कहां भरते हैं। रामू की औरत से कहो वह खाली ही रहती है।

बोधा के मन में आया कि लौट चले। लेकिन फिर सोचा कि ऐसे में बच्चे को छोड़कर वह कहां जायगा? उसने आगे बढ़कर रामू की कोठरी के सामने आवाज दी।

घूंघट काढ़े हुए रामू की औरत किवाड़ की आड़ से बोली बोलो

सरगम (कविता संग्रह 1984)
50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

गारखान गये हैं। सुबह की डियुटी है।'

रामू की वह बच्चे की तबीयत खराब है जरा तू इसे दो घडी सँभाल लती तो मैं कुछ कमाई कर आता' बोधा ने बच्चे को उसे दिखात हुए कहा।

'हमारे बच्चे का कल रात स पेट चल रहा है रामू की औरत न कहा 'वो कह गये हैं जाकर अस्पताल से दवाई ले आना।'

बोधा के मन म आया कि कहे तो फिर हमारे बच्चे को भी जरा लेती जाना लेकिन उसने कुछ भी न कहा। उलटे पाँव कोठरी म लौट आया और बच्चे को चादर पर लिटाकर बडे को उसके पास बठाकर रिक्शा लेन चला गया। सोचा रिक्शा लेकर कुछ कमाकर जून जरा होन पर वह बच्चे को अस्पताल ले जायेगा।

लेकिन रिक्शे के पैडिल पर उसन पाँव रखा तो उसकी आँखो के सामन अँधेरा छा गया। वह लडखडाकर गिरने ही वाला था कि अपने को सभालकर वहीं सडक पर बठ गया। सिर का चक्कर धीरे धीरे समाप्त हुआ तो वह रिक्शा घसीटकर अड्डे पर आया।

वहाँ रिक्शो की कतार खडी थी। बोधा सोच रहा था कि बिना कुछ पेट म डाले शायद वह रिक्शा न खीच सके। मुदद्दू पर नजर पडी तो उसके जी म आया कि इससे कुछ पसा माँग ले तो चाय पानी कर लू। लेकिन सबेरे ही-सुबह जबान कसे गिराय उसकी समझ म न आया।

मुदद्दू ने ही पूछा रात की पाली मे तुम कही दिखायी नही पडे बोधा दादा, रिक्शा नही निकाला था क्या ?

नहीं भाई, बोधा न कहा, बच्चो के लिए अब रोटी मुझे ही सेंकनी पडती है न।

तो फिर कसे काम चलेगा दादा मुदद्दू बोला पाँच पाँच बच्चे है तुम्हारे।

क्या बताऊँ भाई, बोधा न सिर झुकाकर कहा कल से एक दाना मुँह मे नही गया। बच्चा का ही पेट न भरा तो मुझे कहाँ स मिलता ?

ऐसे रिक्शा कसे चलेगा दादा ?' मुदद्दू न पूछा।

बस कहू भाई बोधा ने झिझकते हुए कहा तुम्हारे पास कुछ पसा

हो तो दो चाय पानी कर लूं। दोपहर को लौटा दूंगा।

इस समय तो नहीं है दादा कहकर सुदर्शन ने मुंह फेर लिया।

बोधा जानता था कि इस समय वह किसी के सामने जबान गिरायगा, तो उसे यही जवाब मिलेगा। उसे बड़ा अफसोस हुआ कि सुबह-ही सुबह जबान खाली गयी। जाने दिन कैसे बीतेगा।

सवारियां आने लगीं और रिक्शे उन्हें लेकर जाने लगे। बोधा रिक्शेवालों का उत्साह देख रहा था और अपने बारे में सोच रहा था कि मुझे सवारी मिलेगी तो मैं कैसे चलाऊँगा? उसे पहले के दिन याद आए और उसका मन रो उठा।

आखिर उसके पास चौक की एक सवारी आयी तो उसने साहस करके बैठा लिया और भगवान का नाम लेकर पैडिल पर पांव रखा। शरीर में जैसे बल ही न हो उसे ऐसा लग रहा था फिर भी उसने जान लगा रिक्शा आगे बढ़ाया।

उसे इस सवारी से एक रुपया मिला। इस रुपये से उसने कुछ खा लेने की सोची लेकिन एक क्षण को दुविधा में पड़ गया। पैसे खर्च कर दिए, तो बच्चे के लिए दवा दूध कैसे लगा? लेकिन यह दुविधा देर तक नहीं रही। उसने सोचा कि पेट में कुछ न गया तो रिक्शा नहीं चलेगा। तब फिर क्या होगा?

उसने पचास पैसे की लैया खरीदी और बंबे के पास खड़े होकर पानी पिया। उसे लगा कि अब कुछ दम आ गया है। फिर उसने दोपहर तक अंधाधुंध रिक्शा खींचा और पांच रुपये कमा लिए। कोठरी पर आकर उसने बच्चे को देखा तो उसकी सांस फूल रही थी। उसने बड़े को रिक्शे पर बठाया। उसकी गोद में छोटे को डाला और अस्पताल के लिए चल दिया। दूसरे बच्चे उसका मुंह ताकते रह गये। उन्हें आशा थी बापू खाने को कुछ लाया होगा लेकिन वह तो चला गया। बच्चे भूख के मारे रो पड़े।

डाक्टर ने बच्चे को देखकर कहा तुमने देर कर दी है। इसे निमोनिया है। सीना फेफड़े जकड़ गये हैं। यह सुई जल्दी लाओ।

बच्चे को बड़े की गोद में छोड़कर बोधा सुई लाने दौड़ा। दूकानदार

परवान (कविता संग्रह 1934)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—4,0003

ा नुस्खा देखा फिर बोधा की ओर देखकर बोला 'पाँच रुपये लगेंगे।'

बोधा न भगवान को धन्यवाद देत हुए पाँचों रुपये की रेजगारी दूकान दार के हाथ म थमा दी और सुई लेकर भागा भागा डाक्टर के पास आया। डॉक्टर ने बच्चे को सुई लगाकर नुस्खा लिखते हुए कहा, 'यह दवा ले लो, गीमकर दूध म बच्चे को एक एक घट म पिलाना। शाम को फिर सुई लगगी। एक लकर आना या किसी से लगवा लना। बच्चे को तोप-ढाँककर रखना।'

बोधा बच्चे को लेकर कोठरी म आया और उस आधी चादर पर लिटाकर और आधी से ढँककर बाकी बच्चों को बिलबिलाते हुए छोड़कर रिक्शा लकर निकल गया। नुस्खा उसकी टेंट मे था। उसने सोचा कि पैसा हाथ म आते ही दवा खरीदकर बच्चे को पिला जायगा।

आश्चर्य कि बोधा को इस समय अपनी कमजोरी का कोई भी एहसास नहीं था। बस उसे एक ही धुन थी कि कसे पैसा कमाया जाय और बच्चे के लिए दवा खरीदी जाये। उसे इस समय इसका भी खयाल न था कि बाकी बच्चे भूखे पड़े हैं।

उसने भूत की तरह रिक्शा चलाया। जिस सवारी ने जो पैसा दिया वही स्वीकार कर लिया। करीब पाँच रुपय कमा लिय तो दवा और कुल्हड़ म एक पाव दूध लकर वह कोठरी पर पहुँचा। बच्चों ने उसके हाथ म कुछ देखा तो उनकी आँखें चमक उठी। लेकिन उसने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया। वह छोटे बच्चे को गोद मे उठाने लगा तो उसके हाथ जस सहसा छूट गय। उसने बच्चे पर से अपने बेजान स हाथ हटा लिए। बच्चा मर गया था।

ठीक इसी तरह रात को पाली म रिक्शा चलाकर गत गाड़ियाँ दस कर तीन चार बजे वह कोठरी पर लौटा था, तो अपनी औरत को मरा पाया था। उस सुबह वह फुक्का फाड फाडकर रोया था और पास पड़ोस के लोगों की भीड़ उसकी कोठरी म इकट्ठी हो गयी थी। लेकिन इस वक्त उससे रोया भी न गया जसे उसम रोने का भी दम न था। वह धसककर बच्चे के पास ही सिर बाँहों म डालकर बैठ गया। उस सुबह बच्चों ने बाप को रोते देखा था तो वे भी रोने लगे थे लेकिन इस समय बच्चों की समझ म न आ

रहा था कि बापू इस तरह क्यों बैठ गया है वह उन्हें कुछ खाने को क्यों नहीं देता दूध लाया है तो चाय ही क्यों नहीं बनाता ? फिर भी उनकी समझ में इतना तो आया ही कि जरूर कोई बात है जो बापू इस तरह बैठ गया है। वे उसके इर्द गिर्द जाकर अबूझ आँखों से उसकी ओर देखने लगे। सूरज की कोई भूली भटकी किरण उदास सी उस समय कोठरी में पड़ रही थी।

सूरज की किरण चली गयी और कोठरी में अंधेरा छा गया तो जब बोधा को होश आया। उसके आस पास भूखे बच्चे जैसे निराश होकर लुढ़क पड़े थे। बोधा ने उन्हें देखा और उठ खड़ा हुआ। उसने छोटे को अंगोछी में लपेटा और बाहर आ रिक्शे के पायदान पर लिटा दिया।

वह उसी रास्ते पर रिक्शा चलाता हुआ जा रहा था जिस रास्ते एक सुबह उसकी औरत की अरथी गयी थी। उस समय उसके साथ कई लोग थे इस समय वह अकेला था।

वह लौटा तो कोठरी का दरवाजा खुला था और बच्चे वैसे ही जमीन पर हाथ पाँव सिकोड़े हुए पड़े थे। दरवाजे से बर्फीली हवा सर-सर अन्दर आ रही थी। उसने दरवाजा बन्द कर दिया। अंधकार और भी प्रगाढ़ हो उठा।

वह जमीन पर बैठकर सोचने लगा लेकिन वह कुछ भी सोच न पा रहा था। बच्चे को नदी ले जाने के रास्ते में और लौटते समय भी रास्ते में उसने कुछ सोचने की कोशिश की थी लेकिन वह कुछ भी न सोच पाया था। जैसे कि उसके दिमाग में कुछ सोचने की शक्ति ही न रह गयी थी या कि अब कुछ सोचने के लिए शेष ही न रह गया था। बस एक ही चीज उसके सामने दिखायी दे रही थी—मौत! एक एक कर सब बच्चों की मौत और फिर उसकी भी मौत! और कुछ नहीं कुछ नहीं!

और अचानक उसके दिमाग ने काम करना शुरू कर दिया। वह मौत की ही सोचने लगा। उसे लगा कि एक एक कर बच्चों की मौत उससे न झेली जायगी और फिर उनसे पहले वही कहीं मर गया तो! तब तो उसके बच्चों को कोई पूछने वाला भी न होगा। फिर क्या न ! उसका शरीर उसकी आत्मा काँप उठी। हे भगवान! उसने सोचा क्या मैं ऐसा कर सकूँगा?

9SI 7

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
मा 50 मोतीनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

उसन अपन कांपत हुए हाथा की ओर देखा। नहीं, इन हाथा म शक्ति नहीं है। फिर ? उसन आँखें मूद ली, गोकि उस अधकार म वह आँखें खोले रहता ता भी उमक बच्चे दिखायी न देत। वह हाथा को एक-दूसर स रगडकर जस गरमान की काशिश करन लगा और बुदबुदान लगा—और क्या चारा है और क्या चारा है ?

बाहर रात ठिठुर रही थी, अदर अधकार ठिठुर रहा था। आर बाधा न अचानक सोचना बद कर दिया और अपन अदर ताक्त बटारकर उठ खडा हुआ। पद्रह दिना स उसने उपयोग न किया था फिर भी उसे याद था कि उसका हजामत बनाने का उस्तरा ताक के किस कान म पडा है। उसे अधकार म भी उस्तरा ढूढने म कोइ कठिनाई न हुई। बोधा न उसकी धार पर अँगुली फेरी ता उस लगा कि उस पर मार्चा लग गया है लेकिन फिर भी कोई कम तज नही है—बच्चा की नरम नरम गदनो की नसा को काटन म क्या लगता है

सन्नाटा अधकार म जस साँय साँय करन लगा। बाधा क कानो का अपन दिल की तज धडकनें ठक ठक सुनायी पडने लगी। लेकिन उसन अपन कांपते हाथा आर टांगा को काबू म करने की काशिश की और वह बच्चा क पास बठ गया।

यह सबस बडा है जब प°ा हुआ था बाधा, यह तू क्या सोचने लगा ? आर हल्की सी एक कर की आवाज हुई

उस भयानक ठड म भी बोधा क माथ स पसीना बहन लगा

आह! कितनी छाटी गदन है! कितनी मुलायम! नही कोई भी कष्ट नही हागा कष्ट तो छाटे ने झला आह

यह तीसरा है

और यह मरन वाली माँ की आखिरी निशानी

बलिदान समाप्त हुआ ता जसे बोधा की सास लौटी। उसन टटालकर चादर उठायी और मुह का पसीना पाछा। उस लगा कि अब वह बिलकुल हल्का हो गया है।

सुबह लोगो ने अखबार म पढा

एक रिक्शेवाल न अपन चार बच्चा की हत्या कर डाली रिक्श पर लाशें ल जाते हुए पकडा गया

शहर म उस दिन यही चचा का विषय बना रहा। किसी का आश्चय था किसी को अफसोस और किसी को गुस्सा लकिन यह सब केवल एक दिन क लिए।

दूसरे दिन चर्चा क लिए और भी सनसनीखज खबर आ गयी। •

बरधान (कविता म ह । । मई 1981)
0 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

रेल साहब

मकान की रजिस्टरी का काम पूरा हो गया तो भूतपूर्व मकान मालिक मेजर साहब और वकीलों ने शर्मा परिवार को बधाई दी। शर्मा ने उनसे बारी-बारी हाथ मिलाकर उन्हें धन्यवाद दिया और श्रीमती शर्मा ने हाथ जोड़कर, मुसकराकर उन्हें धन्यवाद दिया। फिर दोनों ने एक साथ ही उनसे विदा ली और कचहरी के कमरे से बाहर आ गये।

बाहर आये तो उनके दोनों बेटों ने मुस्कराकर उनका स्वागत किया और एक ही साथ पूछा, रजिस्टरी हो गयी?

हाँ, शर्मा और उसकी पत्नी ने एक ही साथ मुस्कराकर कहा और उन्होंने अपने हाथ उनकी ओर फैला दिये।

बड़ा बाप से लिपट गया और छोटा माँ से लिपट गया। बाप ने बड़े की पीठ थपथपायी और माँ ने छोटे का गाल चूमा।

छूटकर छोटे ने दाहिने हाथ की मुट्ठी हवा में लहराकर जैसे नारा लगाया गाउ की ओर सहनाड से ! थ्री चियर्स फार पापा एंड ममी ! हिप हिप-हुर्रे !'

शर्मा का चेहरा पुलक से कंटकित हुआ फिर लाल हो गया।

बड़े के होंठों की मुस्कान थोड़ी हो गयी। उसके होंठ काँपकर रह गये।

उसको समय म शायद न आया कि म अब कौन सा नारा दू।

श्रीमती शमा के होठो की मुस्कान सीमा म बधी रही। फिर अचानक उसके चहरे पर सजीदगी आ गयी। आँखो म नम्रता का भाव लाकर वह बोली, थक गाड, माई सन। यह उसी की कृपा ह।

आगे आगे चलत हुए पीछे देखकर अपन उत्साह म ही छोटा बोला, कल एक शानदार पार्टी हो जाय ममी। मरे सारे फ्रेडस आयगे।

शर्मा बोल अभी पार्टी क्स हागी? पहल मकान की मरम्मत करानी हागी सफेदी होगी फिर उसे सजाना होगा। तब पार्टी होगी।

पहले पूजा हागी, श्रीमती शर्मा बोली 'तब पार्टी होगी।

हे—हे—हे—ह!— छोटा दांत दिखाकर हसत हुए बोला ममा का ता कोई काम बिना पूजा के होता ही नही। हे—हे—हे—ह!—क्या पापा?

शमा हसकर रह गया। बडा मुस्कराकर रह गया।

श्रीमती शर्मा सडक क किनारे मिठाई की दुकान क सामन खडी हो गयी और बटुआ खोलकर पस निकालत हुए बड स बोली बटा सवा सर लडडू तो ल लो।

लडडू क्या हाग ममी? छोट न अपना मुह बिलकुल उसक पास लाकर कहा खरीदना ह तो कोई अच्छी मिठाई खरीदिय।

महावीरजी को लडडू ही चढ़त है बेटा।

तो यहां स क्या खरीदती है? वह बोला, हनुमान मन्दिर की दुकान स लीजियगा वह असली घी क लडडू बनाता है, इतन बढिया कि क्या कहू! कहकर उसने चटखारा लिया।

लकिन वह ता महगा दता है।' श्रीमती शमा न कहा।

आज भी आप इन बातो का खयाल करती हैं, ममी? छोटा बोला, ममी आज तो आपका ह—ह—ह! दखत हैं, पापा?

चला भाइ वहां स लना! बोला शर्मा, प्रसाद चढाना ही है ता अच्छा चढाना चाहिए। बटा जा रिक्शे तो पुकार ले।

वह रिक्शा लान सामन अडड की ओर दौड पडा। छोटा बाला, पापा अब आप एक कार भी ले ही लीजिय। हमार पास कार होती तो अब तक

बहू (कहानी संग्रह 1981)
प्रवाह (कविता संग्रह 1984)
म॰ 50 गौरनगर सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

हम जुम स घर पहुँच गय होत।'

'बटा', श्रीमती शर्मा बोली, यह मकान खरीदन म ही हम कजदार हो गय है।

तो क्या हुआ ?' छाटा बाला, थोडा और कज लकर एक कार भी खरीद लीजिय। फिर दखा जायगा।

सुनकर शर्मा जोर से हँस पडा, तो श्रीमती शमा भी हँसे बिना न रह सकी।

शमा बोला वाह बटा!'

—ह—ह—हैं—ह! दाँत चियारकर तब छाटा भी उनकी ओर आँख पपका झपकाकर दखते हुए हँसन लगा।

पापा, य आठ-आठ आन माँग रह हैं आप तय कर लीजिय, बड़े न आकर कहा।

—क्या दोस्ता! शमा रिक्शे वाला क पास आकर वाला, 'आप तुम लागा न हमारा ही गला काटन की साच रखी है ?

वाह, बाबूजी, वाह! एक रिक्शावाला बोला, हम लोग अपनी मजूरी मागत हैं ता आप इस गला काटना कहत हैं ? गहूँ किस भाव बिक रहा है, आप नहीं जानत ?

ता तुम लोग गहू खात हो ? शमा बाला, बाजार स खरीदकर!

नही बाबूजी हम लोगन आदमी थाडे हैं कि गहू खायेंग, हम लोगन ता जानवर हैं और माटी खात हैं।

अर! छोटा अपनी काऊ ब्वाय पट म उछलता हुआ आग आकर वाला कान जानवर माटी खाता है ? जरा बताओ तो! और वह अपनी कमीज की आस्तीन बाजू पर चढान लगा।

रिक्शवाले न सहमकर उसकी ओर दखा तो दूसर रिक्शेवाल न कहा, इसमे हुज्जत की क्या बात है ? हम आठ-आठ आना से कम नही लेंगे।'

कम क्या नही लाग ? छोटा आख तरेरकर उसकी ओर देखते हुए जाला जो रट है उसस ज्यादा तू कस ल सकता है ? बठिय, पापा आप! आइय, ममी!

कसे बठेंगे ? रिक्शावाला बाला, काई जबरदस्ती है

उसकी समझ म शायद न आया कि म अब कौन सा नारा दू।

श्रीमती शर्मा के होठो की मुस्कान सीमा म बधी रही। फिर अचानक उसके चहरे पर सजीदगी आ गयी। आँखो म नम्रता का भाव लाकर वह बाली यह गाड माई सन! यह उसी की कृपा ह!

आगे-आगे चलत हुए पीछे दखकर अपन उत्साह म ही छोटा बाला, बस एक शानदार पार्टी हो जाय ममी! मर सार फ्रड्स आयगे!

शर्मा बाल अभी पार्टी न स हागी? पहल मकान की मरम्मत करानी होगी, सफेदी होगी फिर उस सजाना हागा। तब पार्टी हागी।

पहले पूजा हागी' श्रीमती शमा बोली, तब पार्टी हागी।

ह—ह—ह—ह!— छोटा दात दिखाकर हसत हुए बाला, ममी का ता कोई काम बिना पूजा क होता ही नही! ह—ह—ह—ह!—क्या पापा?'

शमा हसकर रह गया। बडा मुस्कराकर रह गया।

श्रीमती शमा सडक क किनार मिठाई की दुकान क सामन खडी हा गयी और बटुआ खोलकर पस निकालत हुए बड स बाली, बटा गवा सर लड्डू ना ते ला।

लड्डू क्या हाग ममा' छाट न अपना मुह बिलकुल उसक पास लाकर कहा खरीदना ह तो कोइ अच्छी मिठाई खरीदिय।

महावीरजी को लड्डू ही चढत है बेटा।

तो यहा स क्या खरीदनी है? बडे बोला 'हनुमान मदिर की दुकान म लाजियगा वह असली घी क लड्डू बनाता है इतन बढिया कि क्या बताऊ! कहकर उसने चटखारा लिया।

लेकिन वह ता महगा दता है। श्रीमती शर्मा न कहा।

आज भी आप इन बाता का खयाल करती ह ममी? छोटा बाला, ममी आज ता आपका ह—ह—ह! दखत हैं, पापा?

'चलो भाई वही ल लना! बाला शर्मा, प्रसाद चढाना ही है तो अच्छा चढाना चाहिए। बेटा दो रिक्श तो पुकार ले।

बडा रिक्शा लान सामने अड्ड की ओर दौड पडा। छोटा बाला, पापा अब आप एक कार भी ले ही लाजिये। हमारे पास कार होती तो अब तक

— — — —

र प्र० 1981)

अरघान (कविता सग्रह 1984)

सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हम जुम स घर पहुच गय होते !'

'बेटा, श्रीमती शर्मा बोली 'यह मकान खरीदन म ही हम कजदार हो गय हैं।'

तो क्या हुआ ? छोटा बोला, थोडा और कज लकर एक कार भी खरीद लीजिय। फिर देखा जायेगा।'

सुनकर शर्मा जोर स हँस पडा, तो श्रीमती शमा भी हस बिना न रह सकी।

शर्मा बोला वाह बटा !

—ह—ह—हे—ह ! दांत चियारकर तब छोटा भी उनकी ओर आँख झपका झपकाकर देखते हुए हँसन लगा।

पापा, य आठ-आठ आन मांग रह हैं आप तय कर लीजिय', बडे न आकर कहा।

—क्या दोस्तो ! शमा रिक्शे वाला क पास आकर बोला, आज तुम लोगो न हमारा ही गला काटन की सोच रखी है ?

वाह बाबूजी, वाह ! एक रिक्शावाला बोला, हम लोग अपनी मजूरी मागत हैं तो आप इस गला काटना कहत हैं ? गहूँ किस भाव बिक रहा है, आप नही जानत ?

तो तुम लोग गहू खात हो ? शमा बोला, बाजार स खरीदकर !

नही बाबूजी हम लोगन आदमी थोडे हैं कि गहू खायेंगे, हम लोगन तो जानवर हैं और माटी खात हैं।

अर !' छोटा अपनी काऊ ब्वाय पट म उछलता हुआ आग आकर बोला कौन जानवर माटी खाता है ? जरा बताओ तो ! और वह अपनी कमीज की आस्तीन बाजू पर चढान लगा।

रिक्शेवाले न सहमकर उसकी ओर देखा तो दूसर रिक्शेवाले न कहा, इसम हुज्जन की क्या बात है ? हम आठ-आठ आना स कम नही लेंगे।'

कम क्या नही लेगा ? छोटा आखें तरेरकर उसकी ओर देखते हुए बोला जो रेट है उसम ज्यादा तू कस ल सकता है ? बढिये, पापा आप ! आइय, ममी !'

कस बठेंगे ? रिक्शावाला बोला, कोई जबरदस्ती है

हाँ जबरदस्ती ही है। छोटा बिल्कुल उसके मुँह पर चढ़कर बोला।
अब बैठने दे दूसरा रिक्शावाला बोला बड़े आदमिन हैं हम नगा दगा। रुपया-आठ आना तो ये लोगन बख्सीस दे देत हैं।

एक रिक्शे पर शर्मा और उसकी पत्नी बैठ गये और दूसरे पर बच्चे और छोटा बैठ गये।

लो मेरी जान! शर्मा पत्नी की गर्दन में बाँह डालकर अपना मुँह बिल्कुल उसके पास ले जाकर बोला आखिर मकान हमने ले ही लिया तुम्हारी साध पूरी हुई।

आज मैं बहुत खुश हूँ। श्रीमती शर्मा उसका एक हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर बोली बेहद। भगवान को लाख लाख धन्यवाद है।"

देखो अब इस रेल साहब के बच्चे को मैं कैसा मजा चखाता हूँ। शर्मा सामने देखते हुए बोला इस साले ने पिछले आठ दस बरस हम जितना सताया है अब गिन गिनकर उससे बदला चुकाऊँगा। साला खुद हमसे पेश न पा सका तो मेजर को हमारे सिर पर ला बैठाया और खुद एक कमरे में बने रहकर हमारी परेशानी का तमाशा देखता रहा और हँसता रहा। लेकिन मुझे देखो इस मेजर को भी आखिर सर करके ही छोड़ा। आज हमारे हाथ मकान बेचकर वह भी चलता बना। कहता था शर्माजी आपसे एक बिनती है मानना न मानना आप पर है। रेल साहब बूढ़े हैं बीमार हैं चंद दिनों के मेहमान हैं। मकान में एक ओर एक कमरे में पड़े हुए हैं उन्हें पड़े रहने दीजियेगा। बेचारे की ख्वाहिश है कि इसी मकान में ही मरें। उनकी ख्वाहिश पूरी हो जाय। उनकी रूह आपको दुआ देगी। अपनी मेहनत की कमाई से उन्होंने बड़े शौक से यह मकान बनवाया था। उनकी यह ख्वाहिश स्वाभाविक ही है। आप तो जानते हैं जब हमने उनसे यह मकान खरीदा था तो उनकी यह शर्त हमने स्वीकार कर ली थी। वह उस कमरे का तीस रुपया किराया हम देते हैं।

वाह! मरने के लिए क्या हमारा ही मकान है? उसकी पत्नी बोली हमने भी तो अपने शौक के लिए ही मकान खरीदा है।

और क्या? शर्मा बोला मैं इसे हरगिज न रहने दूँगा। चाहे जैसे निकाल निकालकर दम लूँगा। इसने हमें निकालने के लिए क्या क्या न

अरघान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

किया ! सब मुझ याद है ! अब बच्चू को बताऊँगा !'

'लेकिन एक बात है जी—' उसकी पत्नी जैसे कुछ याद करते हुए बोली, तुम कहते थे '

रुको, जरा यहाँ दो पान खा लें—' शर्मा बोला 'इस दुकान पर बहुत अच्छे पान मिलते हैं—' रिक्शेवाले की पीठ पर हाथ रखकर वह बोला, पान की दुकान के पास जरा रोको।

उनका रिक्शा रुकते हुए देखकर छोटा अपना रिक्शा रोककर, चिल्लाकर बोला, 'पापा ! हम भी रुकें ?'

रिक्शे से झुककर शर्मा बोला 'नहीं तुम लोग चलो। हम आ रहे हैं।'

पापा ! हमारे लड्डू मत भूलियेगा !' चिल्लाकर ही छोटा बोला, सब मंदिर में ही न बाँट दीजियेगा। अच्छा ! टाटा ! ममी, टाटा !'

शर्मा और उसकी पत्नी ने भी हाथ उठाकर टाटा किया।

उनका रिक्शा चला गया तो शर्मा ने वहीं से ललकारकर कहा भाई, जल्दी चार पान लगाओ !' और रिक्शे के हुड की आगे की बाँस की कमानी पर हाथ रखकर उसने अपनी पत्नी से कहा, 'हाँ, अब बोलो तुम क्या कहती थी ?

श्रीमती शर्मा ने होंठ भींच लिए और पैसा निकालने के लिए बटुआ गोद में से उठाकर हाथ में ले लिया। खोलते हुए बोली, कितने पैसे चाहिए ?

बारह— उसकी ओर देखते हुए जैसे उसकी अचानक की इस व्यस्तता को समझने की कोशिश करते हुए शर्मा बोल गया।

पैसे उसके हाथ में देती हुई श्रीमती शर्मा बोली, जल्दी पान ले लो। वहाँ भीड़ लगी हुई है।

हमारी बारी पर वह खुद ही बोलेगा शर्मा उधर से लापरवाह होकर बोला तुम कहो, क्या कह रही थी ?

जाने दो' मुँह बनाकर श्रीमती शर्मा बोली मनहूस बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए।

ओह !' अचानक शर्मा के मुँह पर से जैसे एक साया गुजर गया। वह जल्दी में मुँह घुमाकर दुकान की ओर बढ़ गया।

श्रीमती शर्मा भी अचानक उदास हो गयी। उसे अफसोस हो रहा था कि क्यों मैंने ऐसी बात इस खुशी के अवसर पर मुह से निकाली ?

शर्मा ने पान कल्ले में दबाया और तश्तरी लाकर अपनी पत्नी के सामने कर दी। उसने पान उठाकर मुह में डाला और चुटकी भर तबाकू ले लिया।

रिक्शा चला तो दोनों का मुह पीक से भरा हुआ था। यह अच्छा ही था क्योंकि न बोलने का बहाना दोनों के पास था। दरअसल उस एक बात से वे मन ही मन चिंतित हो उठे थे। बोलने की मनःस्थिति उन दोनों में से किसी की भी न थी।

मन्दिर के पास श्रीमती शर्मा चुपचाप रिक्शे से उतरी। शर्मा रिक्शे पर ही बैठा रहा तो वह धीरे से बोली 'तुम नहीं चलोगे ?'

जाओ चढ़ा आओ मेरी वहाँ क्या जरूरत है, शर्मा भी धीरे से ही बोला।

श्रीमती शर्मा धीरे धीरे पाँव उठाती धरती दुकान के पास चली गयी। शर्मा ने उसकी ओर देखा भी नहीं। वह ठुड्डी पर हाथ रखकर सोचने लगा।

सोचने के लिए इस मकान को लेकर, उसके पास हजारों बातें थीं। इस समय सब बातें याद आ रही थीं। उसके जीवन के पिछले ग्यारह वर्षों का इतिहास इसी मकान में लिखा गया था और आज यह मकान भी उसके नाम लिख गया था। जीवन की इस महान सफलता की कल्पना उसने कब की थी !

उसे वह दिन याद आ रहा था, जब अपने एक मित्र के निमंत्रण पर वे इस नगर में आये थे। उसकी स्थिति तब बहुत खराब थी। वह लम्बी बीमारी से उठा था। पास में पैसे न थे। मित्र बड़ा ही साधन सम्पन्न था। उसने मदद का वादा किया था। उसने अपना वचन निभाया था। उसी ने टी० आर० ओ० से मिलकर रेल साहब के इस मकान के हाते में पीछे का एक हिस्सा केवल अठारह रुपये माहवार पर दिला दिया उसी ने कर्ज दिलवाया था और उसी ने उनके लिए एक काम शुरू करा दिया था।

उस समय वह बेहद कमजोर था। न अधिक काम ही कर सकता था

प्रधान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

और न लौट धूप ही कर सकता था। मिश्र ही उसकी पत्नी को साथ लेकर दौड़ भाग करता था और सब काम करा देता था। वह तो एक आरामकुर्सी पर पड़ा पड़ा कुछ पढ़ता रहता था, खांसता रहता था और पीकदान म थूकता रहता था। उसकी पत्नी लौटती थी और उस अपनी सफलता के बारे म हस हँसकर सुनाती थी तो वह भी मुस्करा देता था और उसकी पीठ ठोकने के लिए हाथ बढ़ा देता था। उसकी पत्नी झुककर अपनी पीठ उसकी ओर कर देती थी। पीठ ठोककर वह कहता था— शाबाश मेरी जान!'

दफ्तर देखते ही काम बढ़ गया था। तो उसकी पत्नी ने एक दिन कहा था हम जब दफ्तर के लिए अलग एक कमरा चाहिए। रेल साहब क्या एक कमरा हम और नहीं दे सकते?'

पूछकर देखो उसने कहा था उनके पास कोई खाली कमरा है क्या?

उनके पास जगह की क्या कमी है? उसकी पत्नी बोली थी, चाहें तो अपने ही मकान म कोई एक छोटा सा कमरा दे सकते हैं। इधर किनारे का उनका कमरा तो खाली ही दिखायी पड़ता है।

इधर के हिस्से म तो मिसेज विल्सन अपने भाई के साथ रहती हैं न?

वे लोग तो आगे के दो बड़े कमरों म रहते हैं— उसकी पत्नी बोली थी, यह छोटा कमरा हमें मिल जाता तो बड़ा ही अच्छा होता। कहीं दूर आफिस रखने से तो बड़ी तकलीफ होगी। सुनो आज चाय पर रेल साहब को बुलाती हूँ। तुम बात करो।'

रेल साहब ने उनके बढ़ते हुए काम की बात सुनकर खुशी जाहिर की थी लेकिन कमरे का किराया उन्होंने बीस रुपया माँगा था। साथ ही शर्तें रखी थीं कि कमरा किराये पर न समझा जायगा किराये की रसीद नहीं मिलेगी जब चाहेंगे खाली करा लेंगे वहाँ कोई शोर न होना चाहिए मिसेज विलसन और उनके भाई बूढ़े और शांतिप्रिय लोग हैं उन्हें किसी तरह की कोई तकलीफ न होनी चाहिए। अंत मे उन्होंने कहा था मैं सीधा सपाट आदमी हूँ। एक बात करता हूँ। मोल तोल नहीं जानता।' कहकर वह उठे थे चाय के लिए धन्यवाद दिया था और चल पड़े थे।

रेल साहब के साथ नज़दीक से उनका यह पहला परिचय था। यह कोई उत्साहवर्द्धक न था। चाय बेकार गयी थी जिकनी नमकीन खाना का भी कोई असर न हुआ था।

लेकिन उन्हें जरूरत थी दो-तीन दिन सोच विचार करने के बाद उन्होंने उन्हीं की शर्तों पर कमरा ले लिया था और मामूली फर्नीचर लाकर दफ्तर चालू कर दिया था।

उनका काम अब व्यवस्थित हो चला था। उनका स्वास्थ्य भी अब ठीक सा ही था। पति पत्नी दोनों अब जी-जान से काम में जुट गये थे। और कुछ संयोग भी ऐसा था कि लगातार उनकी गोटी लाल होती गयी थी व दिन दिन तरक्की करते गये थे।

फिर ऐसा हुआ था कि एक दिन मिसेज विलसन के भाई की लत लग गयी थी और छत्तीस घंटों के अन्दर ही वह चल बसा था।

तीन चार दिन के बाद एक सुबह रेल साहब उनके पास आये थे। उसकी पत्नी ने तपाक से कुर्सी आगे बढ़ाई थी। रेल साहब बैठते हुए बोले थे 'आप लोग वह कमरा खाली कर दीजिये।'

उन्होंने चौंककर रेल साहब की ओर देखा था। फिर एक-दूसरे की ओर देखा था। कोई बात उनके मुंह से न निकली थी।

रेल साहब सामने देखते हुए बोल थे मिसेज विलसन का भाई मर गया। उनका काम अब एक ही कमरे से चल जायगा। उन्होंने एक कमरा खाली कर दिया है। उस कमरे को आप लोगों के इस कमरे के साथ मिला कर मैं किराये पर उठाऊंगा। किरायेदार ठीक हो गया है। आप लोग कब तक खाली करेंगे? बता दीजिये।

तुरंत हम क्या बतायें वह बोला था।

मुझे तो जल्दी है रेल साहब बोले थे हमारा किराये का नुकसान हो रहा है। आप लोग एक हफ्ते के अंदर खाली न करेंगे तो दोनों कमरों का पूरा किराया मैं आप लोगों से ही वसूल करूंगा। साफ बात है, हम नुकसान क्या उठायें? आप लोगों ने मेरे कहने पर कमरा खाली करने का वादा किया था।

सो तो ठीक है लेकिन

अरघान (कविता संग्रह 1984)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय सागर—470003

'हम कुछ नहीं जानते बाबा।' रेन साहब बोले थे, 'मैं रेल का रिटायर्ड आदमी हूँ, पेंशन पाता नहीं। जमा किया हुआ सारा रुपया इस मकान में लगा दिया था। किराये पर ही हम गुजर करते हैं।'

'कितना किराया होगा, रेन साहब?' उसकी पत्नी ने शायद यों ही पूछ लिया था।

'पचास।'

'पचास तो बहुत ज्यादा है।'

'क्या ज्यादा है? बीस रुपया आप लोग देते हैं। तीस रुपये इस बड़े कमरे का, जिसके साथ एक छोटा कमरा और बाथ भी है, क्या ज्यादा है? मैं झूठ नहीं बोलता। तय हो चुका है।'

'कुछ कम कर देते तो हम भी ले लेते।'

'तुम क्या करोगी?' उसने पूछा था, 'तुम्हें क्या जरूरत है?'

'आफिस वहीं ले जायेंगे? रेन साहब कुछ कम कर दें तो उस कमरे को हम अपनी बैठक बना लें।'

'मैं सीधा सपाट आदमी हूँ,' रेन साहब बोले थे, 'एक बात करता हूँ। मोल-तोल नहीं जानता।' कहकर वह उठ खड़े हुए थे और चल पड़े थे। दरवाजे तक जाकर वह अचानक रुक गये थे। मुड़कर बोले थे, 'एक हफ्ते तक मैं इंतजार करूँगा।'

और एक हफ्ते बाद उन्होंने वह कमरा भी ले लिया था और उसे अच्छी तरह सजाकर बैठक बना लिया था।

फिर थोड़े दिनों के बाद उसने देखा था कि अकेली मिसेज विलसन के प्रति उसकी पत्नी के मन में दया उमड़ रही है। जब देखो उसकी जबान पर मिसेज विलसन का नाम रहता था। आखिर उसने भी माना था कि मिसेज विलसन सम्मान करने योग्य महिला है। और फिर तो मिसेज विलसन के साथ उनका घरापा होने में देर ही न लगी थी। कोई भी घरेलू काम होता तो मिसेज विलसन, कोई भी चीज खरीदनी होती तो मिसेज विलसन। और मिसेज विलसन के साहब का छोड़ा हुआ सारा फर्नीचर और सामान उनके घर में आ गया था। जब घर में ही खरीददार है तो बाहर जाने की क्या जरूरत? फिर मिसेज विलसन को यह समझने में बहुत दिन लगे थे कि

जितनी सुख सुविधा उनके साथ रहने में है अकेले रहने में नहीं है। वह उनकी बात मानने को तैयार हो गयी थी लेकिन

मिसेज विलसन ने कहा था रेल साहब को तो कोई उज्र न होगा न ?'

उसका साहस बढ़ गया था। वह अब पहले का आदमी न था उसके पास अब पैसा था जमा हुआ व्यापार था समाज में सम्मान था। बोला था, उन्हें क्या उज्र होगा ? यह तो आपकी अपनी पसन्द का मामला है। हम और आपकी मंजूर है तो दूसरे का इसमें क्या लेना देना ? फिर भी रेल साहब कुछ करेंगे तो उसकी जिम्मेदारी हमारे ऊपर होगी। आप पर हम कोई आँच न आने देंगे। आप खातिर रखें। आपकी हिफाजत करने की ताकत हममें न होती तो ऐसी बात ही हम न करते।

एक दिन जब रेल साहब शिकार पर गये हुए थे तो मिसेज विलसन का सामान पीछे के घर के एक कमरे में पहुंचा दिया गया था और मिसेज विलसन के खाली कमरे में पलंग लग गये थे।

आधी रात को जब रेल साहब ने पुकारकर उनका दरवाजा खटखटाया था तो वह दरवाजा खोलकर बाहर आया था और उसने उनका अभिवादन किया था गुड ईवनिंग रेल साहब !

रेल साहब जलकर खाक ही तो हो गये थे। उन्होंने अभिवादन का उत्तर न देकर सीधे पूछा था आप लोग यहाँ कैसे आ गये ? यह तो मिसेज विलसन का कमरा है।

हमने अदला बदली कर ली है उसने निहायत सहजता के साथ कहा था, 'वह हमारे हिस्से के एक कमरे में अपनी मर्जी से चली गयी है।

यह नहीं हो सकता ! रेल साहब ने क्रुद्ध होकर कहा था मिसेज विलसन जहाँ चाहे जायें लेकिन आप लोग इस कमरे में नहीं आ सकते !

क्यों ? उसने पहली बार रेल साहब के सामने एक सवाल फेंका था इसमें आपको क्या उज्र हो सकता है ?

मकान मालिक की इजाजत के बिना इस तरह का अदली बदली नहीं हो सकती।' रेल साहब जोर से बोले थे आप लोग कल सुबह यह कमरा खाली कर दीजिए !

(... 1981)

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)

सी 50, गौरनगर सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

'सुबह बात करेंगे', उसने लापरवाही [illegible] कहा था। [illegible] वक्त आराम कीजिये।

जब तक आप लोग मेरे कमरे खाली नहीं कर देंगे, मैं आराम नहीं कर सकता। मैं सीधा-सपाट आदमी हूँ, एक बात कहता हूँ। मान-मनौव्वल नहीं जानता। आप लोग जबर्दस्ती करेंगे तो आप लोगों को [illegible] सभी कमरे छोड़ने पड़ेंगे। समझ लीजियेगा!' कहते हुए रेल साहब चले गये थे।

दूसरे दिन रेल साहब ने बाहर ही बाहर उनकी ओर से [illegible] लगाये थे, लेकिन एक बार भी उनके पास न आये थे।

आया था फिर कचहरी का सम्मन। मुकद्दमा शुरू हुआ था।

उसके पास पैसे थे। वह पैसे बहा सकता था। लेकिन रेल साहब की स्थिति ऐसी न थी। मुकद्दमा [illegible] लेकिन अफसरी और पैसा [illegible] वह क्या करते? मुकद्दमा [illegible] लगा था।

तब रेल साहब ने उन्हें परेशान करने की एक दूसरी तरकीब सोच डाली थी। उन्होंने अपने घर के पीछे के हिस्से को अचानक एक भारी आदमी के हाथ बेच दिया था। और तुरन्त उस आदमी ने उन्हें एक महीने के अन्दर घर खाली करने की नोटिस दे दी थी।

उसे इस बात की आशा न थी। लेकिन अब वह क्या कर सकता था। वह घर खाली करने का मतलब तो यह था कि मिसेज़ [illegible] को उनका कमरा वापस न दिया जाय और रेल साहब के सामने सिर झुका लिया जाय। यह अब वह किसी कीमत पर भी करने को तैयार न था।

दूसरा मुकद्दमा भी शुरू हुआ था। लेकिन अब की जबरदस्त [illegible] खाना पड़ा था। दो तीन पेशी के बाद ही उसने देख लिया था कि इसमें पार पाना मुश्किल है। सो उसने अपने वकील के जरिये समझौते की बात चलायी थी। उसे झुकना पड़ा था। अठारह की जगह पचास रुपये किराया देना उसे स्वीकार करना पड़ा था।

रेल साहब ने तब दूसरा गुल खिलाया था। सुना गया कि वह यह मकान भी बेचने जा रहे हैं। कोई फौज का अफसर है, जल्दी ही रिटायर होने वाला है, वह यह मकान अपने रहने के लिए खरीद रहा है।

रेग साहब इस सीमा तक जायेंगे ऐसा वह सोच भी न पाया था। उसने परेशान होकर अपने वकील को यह सूचना दी थी और पूछा था कि अब क्या किया जाय ?

वकील ने कहा था 'शर्मा साहब वह मकान बेच रहे हैं तो आप ही क्या नहीं खरीद लेते ? किस्सा पाक हो।

मैं मकान नहीं खरीद सकता उसने कहा था आप कोई और तरकीब निकालें।

और कोई तरकीब नहीं है वकील बोला था नया मकान मालिक आपको निकालने के लिए मुकद्दमा लड़े तो आप भी लड़ सकते हैं।'

उसने अपनी पत्नी से बात चलायी थी तो उसने कहा इन मुकद्दमों से मैं तो आजिज आ गयी हूं। सारी जिन्दगी क्या हम मुकद्दमा ही लड़ते रहेंगे ? जितना पैसा इन मुकद्दमों में खर्च हो रहा है उतने में तो हम अपना ही एक अच्छा खासा मकान बनवा सकते हैं। अब किराये के मकान में रहना भी मुझे अच्छा नहीं लगता। कहीं जगह लेकर अपनी पसंद का एक मकान बनवा डालें और छोड़ें इस मकान को। क्या धरा है इसमें ?

ऐसा तो न कहो यह मकान हमें खूब फला है।

तो इसे ही खरीद लो कुछ तो करो। यह मुकद्दमों की परेशानी मुझसे सही नहीं जाती। बेकार में पैसा बरबाद हो रहा है समय बरबाद हो रहा है।

मकान तो मैं खरीद नहीं सकता।

क्यों ? पैसे तो हमारे पास हैं।'

पैसे की बात नहीं है वह बोला था दूसरी बात है।

क्या ?

मेरे पिताजी ने एक मकान बनवाया था। गृह प्रवेश के दिन मेरी माँ की मृत्यु हो गयी थी।

ओह! उसकी पत्नी जरा रुककर बोली थी लेकिन तुम मकान बनवा तो नहीं रहे हो तुम तो बना बनाया खरीद रहे हो।

उससे क्या फर्क पड़ता है उसने कहा था मेरे मन में डर है तो यह काम क्यों किया जाय ? कोई खतरा क्यों मोल लिया जाय !

अरघान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

उसकी पत्नी उदास होकर गिरे स्वर में बोली थी 'इसका तो यह मतलब हुआ कि मेरी जिन्दगी की एक हसरत मेरे साथ ही चली जायगी। हम न कोई मकान बनवा सकेंगे, न खरीद सकेंगे। और हमी क्या हमारे लड़के भी और उनके लड़के भी। यह तो बड़ी ही अजीब बात होगी। मैं जाने कब से यह साध लिए बैठी थी कि कभी पैसा होगा तो अपना एक मकान बनवायेंगे खूब सजायेंगे।'

सजा तो तुम किराये के मकान को भी सकती हो, वह बोला था 'क्या फर्क पड़ता है? जो हो भाई मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। आगे की भगवान जाने।'

अफसर के नाम मकान की रजिस्ट्री हो गयी थी। रेल साहब ने अपने दो कमरों में से एक कमरा खाली कर दिया था। उस कमरे में अफसर के वाल बच्चे आ गये थे।

दूसरे दिन अफसर उनके पास आया था। उन्होंने आदर के साथ उसे बैठाया था। उसकी पत्नी ने और उसने उसे बधाई भी दी थी। उसने धन्यवाद दिया था। फिर बोला था, आप लोगों से एक अर्ज है। मैंने यह मकान अपने रहने के लिए खरीदा है। आप लोग मेहरबानी करके अपने लिए कहीं और इंतजाम कर लें, आप लोगों को कितना वक्त चाहिए बता दीजिये।

तुरन्त उसने जवाब नहीं दिया था। अफसर ने दुबारा पूछा था तब उसने कहा था, 'आप तो जानते हैं रेल साहब के साथ इन्हीं कमरों के लिए हमारा कई साल तक मुकद्दमा चला है। कहीं हम इंतजाम कर पाते तो क्या मुकद्दमे में अपना समय और धन बरबाद करते?

अफसर ने अपनी धनी भौंह उठाकर कहा था इसका तो यह मतलब हुआ कि इस शहर में कोई और मकान ही नहीं है।

आप अफसर हैं, हो तो दिला दीजिये' उसने बड़ी सरलता से कहा था 'हम चले जायेंगे।'

यह मेरा काम नहीं है' अफसर बोला था मेरा तो काम यह है कि मैं जल्दी से जल्दी अपना मकान खाली करा लूं। आप लोग भलमनसाहत से न छोड़ेंगे तो मजबूर होकर मुझे सख्ती से पेश आना पड़ेगा। रेल साहब की

तरह मैं कचहरी नहीं जाऊँगा। मुझे तो जो काम करना होगा, यहीं कर डालूगा। मैं मजर हूँ।' उठते हुए उसने कहा था 'बीस दिन मेरी छुट्टी और बाकी है। पद्रह दिन का वक्त मैं अपनी ओर से शराफत के नाते आप लोगो को देता हूँ इस बीच आप लोगो ने मकान खाली न कर दिया, तो फिर मैं क्या कर सकता हूँ आप लोग देखेंगे।

वह चला गया था तो उसने उठते हुए अपनी पत्नी से कहा था मेरे कपडे निकालो मैं जरा अपने मित्र के पास जाऊँगा।

मित्र ने सब सुनकर कहा था यार छोडो यह मकान, मैं तुम्हे कोइ और मकान दिला देता हूँ। मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था तुम माने नहीं।

उसने कहा था तुम जानते हो यह घर हम कैसा है। मैं किसी भी हालत मे यह घर नहीं छोडना चाहता। तुम कोई और तरकीब बताओ। मेरा खयाल है कि तुम जरूर कुछ कर सकते हो।

वह फौजी आदमी है डर है कुछ कर न बैठे मित्र ने कहा था।

मुझे उसकी चिंता नहीं है वह बोला था कोई छूट तो कर नहीं देगा।

क्या ठिकाना है, मित्र ने कहा था खैर, तुम एक पत्र रक्षामंत्री के नाम लिख दो कि यह मजर, नाम तो तुम्हे मालूम होगा ही हमारी जान लेने की धमकी दे रहा है। उसकी एक एक प्रतिलिपि यहाँ के मुख्यमंत्री कलक्टर और एम० पी० के पास भेज दो। मैं दो चार दिनों में ही इनसे मिल लूगा। फिर अपने वकील से राय लो और पूछो कि क्या इसके खिलाफ कोई कानूनी कारवाई भी की जा सकती है या नहीं।

पत्र मैं आज ही भेज दूगा उसने कहा था, 'लेकिन तुम जल्दी से जल्दी उन लोगो से मिल लो। मैं सीधे वकील के यहाँ जा रहा हूँ।

पत्र लिखने के बाद चौथे दिन शाम को दारोगा पूछ ताछ करने आ पहुचा था। पहले वह मजर के पास गया था फिर उनके पास आया था। बैठते ही बोला था हाँ साहब अब आप कहिए मजर साहब का तो कहना है कि मैंने कोई धमकी नहीं दी है, इन लोगो ने झूठी रिपोर्ट लिखा दी है।

( ) (1981)
अरघान (कविता संग्रह 1984)
सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

'हम झूठी रिपोर्ट क्या लिखायेंगे ?' उसने कहा था, 'इसी कमरे में मेरी पत्नी, हमारे एकाउंटेंट, क्लर्क और चपरासी के सामने उन्होंने हमें मार डालने की धमकी दी थी। रोज पिस्तौल हाथ में लिए हुए वह हमारी ओर कई चक्कर लगाते हैं और जोर जोर से गाली बकते हैं। डर के मारे हमारी तो जान सूखी रहती है। खाना पीना हराम है। रात को नींद नहीं आती है। हम कमजोर आदमी ठहरे। वह मेजर हैं, जान क्या कर बैठें।

लेकिन वे तो कहते हैं '

कहते हैं तो बहुत अच्छा है', वह बोला था 'हमारी उनसे कोई दुश्मनी थोड़े है। हम तो अच्छे पड़ोसियों की तरह रहना चाहते हैं।

आप ये कमरे क्या नहीं खाली कर देते ?' दारोगा ने कहा था 'वह जल्दी ही रिटायर होने वाले हैं। अपने रहने के लिए उन्होंने यह मकान खरीदा है।

पंद्रह दिन के अंदर हम कैसे खाली कर सकते हैं ?' उसने कहा था हम तो मकान खोज ही रहे हैं।

आप कितना वक्त चाहते हैं ?'

'लीजिए, चाय का वक्त है, पहले चाय पी लीजिए!' अपने हाथ से उनके बीच की मेज पर ट्रे रखते हुए उसकी पत्नी ने कहा था 'हमारी ओर से तो कोई शिकायत की बात नहीं है। आप उन्हें ही समझाइए। उन्हें तो यह सोचना चाहिए कि जब तक वह रिटायर होकर चले नहीं आते, उनके बाल बच्चे यहां अकेले रहेंगे। हमसे अच्छा संबंध रहेगा तो मौके पर हम उनके काम आ सकते हैं। लड़ाई झगड़े में क्या रखा है? कोई बहुत बड़ा परिवार भी उनका नहीं है। बीवी और तीन बच्चे। लीजिए यह बर्फी तो आपने ली ही नहीं, बहुत अच्छी है।'

लेता हूं, एक टुकड़ा उठाते हुए दारोगा ने कहा था, 'आप कोई गलत बात नहीं कह रही हैं। लेकिन वे मेजर हैं आप जानती हैं, उनकी बात हमेशा ऊपर ही रहेगी। मैं आप लोगों को समझा सकता हूं। उनको तो नहीं समझा सकता।

'यह सब रेल साहब की बदमाशी है' उसने कहा था इन्होंने शुरू से ही हमें परेशान कर रखा है। बरसों हमारे खिलाफ मुकदमा

रहा और दूसरा से चलवाता रहा। अब इनके कधे पर बदूक रखकर चलाना चाहता है। मकान के बेचने के बाद भी वह एक कमरे म ठहरा हुआ है और हम जलाने के लिए जुमने कसता रहता है। मजर साहब स कहिये कि वह पहले उसे निकाल।

देखिये, मैं पहले ही कह चुका हू कि म उसमे कुछ भी नहीं कर सकता।

फिर तो यह हम पर सरासर ज्यादती ह वह बोला था 'रहने के लिए वह मकान खाली कराना चाहते है तो पूरा मकान खाली करायें। सिर्फ हमी से कस करा सकते है ?

यह म नहा जानता दारोगा बोला था एसी बात है तो आप कचहरी म जाइये। लकिन यहाँ अमन रहना चाहिए।

आप किसी स भी पूछ लीजिय वह बोला था, जो हमने एक लफ्ज भी कहा हो। वनी हम धमकी दते रहते है गालियाँ बकते रहते हैं।

यह खस्ता भी आप लीजिये उसकी पत्नी बोल उठी थी बिलकुल ताजा है।

फौजी आदमियों को तो आप जानते ही है दारोगा बोला था मैं तो आप लोगो स फिर यही कहूंगा कि य कमरे खाली कर दीजिये। एक महीना, दो महीने तीन महीने जितना चाहे वक्त उनस ले लीजिये।

कितने चम्मच चीनी दू ? उसकी पत्नी ने चाय बनाते हुए पूछा था।

दे दीजिये तीन चार चम्मच दारोगा न कहा था दूध भी मैं ज्यादा ही लेता हू।

चपरासी तश्तरी म गोल्ड फ्लेक का पकेट दियासलाई और पान रख गया था।

पूरी खातिर हो चुकने के बाद दारोगा उठने लगा था तो उसने कहा था हमारे एकाउटेंट साहब आपसे कुछ बातें करना चाहते है। आइये एकाउटेंट साहब।

व सब वहाँ स हट गये थे।

उस रात बडी देर तक बगल के कमरे से ललकारें आती रही थी। रेल साहब मेजर साहब को उकसा रहे थे और मेजर साहब शराबी की तरह

(संग्रह 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

बमक रहे थ। उसन धीरे स अपनी पत्नी से बात म कहा था, 'जो बहुत चमकता है वह कुछ करता नहीं है। देखो अभी दो चार दिन म क्या होता है। लेन देन्दन पड जायेंगे बच्चू को। सोचा था कि धौंस म स लेंगे मुझे। हु ऽऽऽ।'

चौथ दिन उनके यहाँ नोटिस आयी थी। एक महीने के अंदर मकान खाली कर दो वर्ना कानूनी कारवाई की जायेगी।

वह अपनी पत्नी से बोला था, 'अब आय रास्त पर। लड़ें मुकद्दमा। किसे इनकार है? कुछ रल साहब भर पाय कुछ य भरेंगे। चलो, अब करन के लिए फुरसत हो गया।

मेजर साहब छुट्टी बिताकर चल गय थ। रल साहब उनके पगागार बन थे। वक्त पर मुकद्दमा चालू हो गया।

रेल साहब कभी ही मुस्तैदी दिखा रह थ जसे अब भी मकान मालिक वही हो। उस आदमी को देखकर गुस्सा भी आता था, हँसी भी आती थी अफसोस भी होता था और दया भी आती थी। उनका स्वास्थ्य अब बहुत गिर गया था। अक्सर सुनायी पडता था कि बीमार हैं। एक दिन सुनायी पडा कि मुह स खन गिरा है। डॉक्टर की गाडी भी दिखायी दी थी। लकिन फिर दो दिन बाद देखा गया था, होठों म सिगरेट सुलाग हुए खुरपी लेकर बाग म जुटे हुए थ। एक बार सुना गया था कि साइकिल स गिर पड़े हैं, उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया है। दूसरे दिन देखा गया था कि करियर पर गहू का टिन लादे आटा पिसान जा रह हैं, होठों म सिगरेट झूल रही है और दाहिने हाथ म कुहनी तक पट्टी बंधी हुई है। पहल ही कम व्यस्त आदमी न थे, अब मेजर साहब के परिवार के कारण उनकी व्यस्तता दुगुनी हो गयी थी। बिलकुल सरक्षक बन हुए थे।

मुकद्दमा चलता रहा। बीमारी की हालत म भी रल साहब तारीख पर पहुँचने से न चूकत थे। उसी तरह अकड दिखात थ, जुमन कसत म और कभी-कभी ललकार भी देते थ।

महीनों बाद मेजर साहब छुट्टी पर आय थ तो पता [illegible] सूचना दी थी कि मेजर साहब भी यह मकान बेचकर [illegible] नगर म बसन का इरादा तय कर लिया है, रल साहब [illegible]

है। उन्हें मेजर साहब के वकील से इन बातों का पता चला था।

हद हो गयी थी। उसने कहा था, वकील साहब मेरी एक अकेली जान के साथ यह रेल साहब कितने मोहर लड़ाते जायेंगे। सच ही, अब तो मैं भी थक गया।

तो आप ही यह मकान क्यों नहीं खरीद लेते ' वकील ने कहा था।

गरजमंद है शायद असल में भी कुछ छोड़ दें। कहिये तो मैं सीधे मेजर साहब से बात करूँ ?

मैं नहीं ले सकता।

फिर दूसरा क्या इलाज है ? वकील ने कहा था न आप मकान खरीदेंगे न छोड़ेंगे। फिर क्या हो सकता है ?

घर देखिये।

कहकर वह चला आया था। पत्नी से बताया था तो वह बोली थी, बीस हजार में तैयार हो तो ले लो। उन्होंने सत्ताईस में खरीदा था न ?

हाँ। लेकिन मुझे तो मकान मालिक बनना ही नहीं है।

सुनो उसकी पत्नी बोली थी तुम अपनी संस्था के नाम पर इसे खरीद लो।'

उससे क्या फर्क पड़ता है ? उदास होकर उसने कहा था।

नहीं फर्क पड़ता है तो जो जी में आये करो ! उसकी पत्नी बिगड़ कर बोली थी सारी जिन्दगी मुकदमे लड़ते रहो और परेशान होते रहो !'

मैं ही मुकदमा लड़ता हूँ ?'

नहीं तो कौन लड़ता है ? उसकी पत्नी जैसे लड़ने के लिए तैयार होकर आयी थी रेल साहब तो पागल हैं लेकिन उनके साथ साथ तुम भी पागल क्यों हो रहे हो ?

क्या करूँ ? यह मकान तो छोड़ नहीं सकता ! वह बोला था और

अब और मैं कुछ नहीं सुनूँगी ! उसकी पत्नी उसी तरह बोली थी चाहे इधर या उधर ! तुम एक बात तय कर लो। लेकिन तुम्हें अब मुकदमा मैं नहीं लड़ने दूँगी ! बाप रे बाप ! कोई हिसाब है कितना रुपया बरबाद हो गया कितना समय बरबाद हो गया ! नहीं, अब मैं तुम्हारी एक भी न

प्रेस 1981

अरथान (कविता संग्रह 1984)

सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुनूगा !'

ता जाओ जो जी म आय करा', सिर डालकर वह बाला था, 'हम दा' मकान लना भी चाह ता क्या रत साहब हमसे सौदा होने देंग ?

'नहीं होन देंग, तो कौन इस मकान पर कब्जा करेगा ?' उसकी पत्नी नरम होकर बोली थी, 'लोग क्या जानत नहीं हैं कि इस मकान को लेकर हमारे साथ कितनी मुकद्दमबाजी हुई ? एक रकम मकान क लिए और दूसरी रकम मुकद्दमबाजी क लिए रखकर ही तो कोई बेवकूफ इस मकान पर पड़ेगा। तुम हाँ कर दो तो मैं अभी तुम्हारे मित्र का साथ लेकर कमीज साहब क यहाँ जाऊँ और बात चलाऊँ। या भी बात चलान म क्या हर्ज है ?'

सहसा उससे कोई जवाब न बन पड़ा था तो उसकी पत्नी ही अनुनय क स्वर म बोली थी, 'और कुछ नहीं तो तुम अपनी जीवन की एक साध ही पूरी करन की बात का खयाल करके हाँ कर दो। बोलो !' कहकर उसने उसका हाथ पकड़ लिया था।

वह क्या करता। अंत विवश होकर ही उसने कह दिया था, 'जाओ।'

'तुम मन्दिर म नहीं गये तो देखो, पुजारीजी ही तुम्हें प्रसाद देने आ गये।'

पत्नी की आवाज सुनकर श्यामा ने सिर उठाया। उसके सामने उसकी पत्नी और पुजारीजी खड़े थे। वह कुछ समझ सके इसके पहले ही पुजारीजी ने हाथ बढ़ाया और उसके माथे पर रोली का टीका लगा दिया। फिर उसकी पत्नी के हाथ के थाल म से एक लड्डू निकालकर उसे देते हुए उन्होंने कहा, 'प्रसाद लीजिये। महावीरजी सब कल्याण करेंगे।'

उसने लड्डू ले लिया तो पुजारीजी ने कहा, 'इसे खा लीजिये। अभी मैं भिजवाता हूँ।' कहकर वह खड़ाऊँ बजाते हुए मन्दिर की ओर चले गये।

'खा जाओ !' उसकी पत्नी ने कहा, 'भगवान का नाम लेकर प्रसाद तुरंत मुँह म डाल लेना चाहिए।'

लड्डू मुँह म डालकर खाते हुए श्यामा बोला, 'ठाकुर ठीक कहता था, लड्डू बहुत अच्छा है।'

उसकी पत्नी ने दोना उसके सामने करते हुए कहा, 'और ले लो, तुम्हें

भूख लगी होगी। आज दोपहर की चाय भी हमने नहीं ली।'

शर्मा ने बायें हाथ से दो लड्डू उठाते हुए पूछा, 'तुमने खाया है?'

'हाँ, पुजारीजी ने अपने हाथ से एक लड्डू दिया था।'

'तो और लो, सचमुच बड़े मजेदार है।'

'तुम चाहो तो और लो।'

तभी एक आदमी पीतल का लोटा और एक गिलास लेकर आ गया। पानी गिलास में डालकर देते हुए उसने कहा, 'प्रसाद मुझे भी दें, माँ!'

श्रीमती शर्मा ने उसे एक लड्डू दिया, तो रिक्शेवाले ने भी हाथ बढ़ा दिया। श्रीमती शर्मा ने उसे भी एक लड्डू दे दिया, तो शर्मा बोला, 'सब यहीं बाँट दोगी तो घरवालों को क्या दोगी? छोटा इन्तजार कर रहा होगा।'

रिक्शे पर बैठते हुए श्रीमती शर्मा शरमायी हुई-सी बोली, 'प्रसाद तो बाँटने ही के लिए होता है।'

रिक्शा चला तो श्रीमती शर्मा बोली, 'जरा बताओ तो सबसे पहले इस मकान में हम क्या बदलेंगे?'

शर्मा ने कोई जवाब नहीं दिया तो उसकी पत्नी ही बोली, 'सबसे पहले हम उसकी दीवारों का रंग बदलेंगे। गेरू का रंग देखकर तो मेरा माथा खराब हो जाता है। क्या तुम्हारी क्या राय है?'

फिर भी शर्मा न बोला तो वही बोली, 'सामने हाते के बायें ओर जो अमरूद का बाग है उसके बारे में तुम्हारा क्या खयाल है? मैं तो सोचती हूँ कि उसे कटवाकर लॉन बना देना चाहिए। उसमें हम बैडमिन्टन खेलेंगे। क्यों?'

फिर भी शर्मा न बोला, तो तनिक परेशान होकर वह बोली, 'क्या सोच रहे हो?'

तब शर्मा बोला, 'कुछ नहीं।'

'कुछ तो तुम जरूर सोच रहे हो!'

शर्मा जैसे झुंझलाकर बोला, 'जी हाँ, सबसे पहले तो उस रेन साहब के बच्चे को मुफ्त निकालना है।'

'फिर मुकद्दमा लड़ोगे क्या?' शंकित होकर उसकी पत्नी बोली।

'क्यों न लड़ूँगा?' दाँत किटकिटाकर शर्मा बोला, 'मुकद्दमा लड़ूँगा,

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

फौजदारी करूंगा, कुछ भी करूंगा, लेकिन उसे निकालकर दम लूंगा। उस शैतान को मालूम तो हो जाय कि

करना जो जी मे आय करना', उसकी पत्नी बोली, लेकिन भगवान के लिए आज के दिन तो शांत रहो।

तुम शांत रहने की बात करती हो ' शर्मा बिगड़कर बोला इस हरामजादे ने मुझे इतना बड़ा खतरा मोल लेने को मजबूर कर दिया।'

कुछ नही होगा', उसकी पत्नी उसे समझाते हुए बोली, भगवान की कृपा से सब ठीक रहेगा। जो दूसरों का बुरा चाहता है खुद उसी का बुरा होता है। रेल साहब को ही देखो कभी मकान मालिक थे और आज वे हमारे लड़के खड़े हैं क्या!

दूर से शर्मा ने देखा। मकान के फाटक पर उसके दोनों लड़के हाथ उठाये हुए खड़े थे। उसने फिर देखा तो लड़के हाथ उठाये हुए उन्ही की ओर दौड़े आ रहे थे। शर्मा ने रिक्शेवाले की पीठ पर हाथ रखकर कहा, जरा रोको तो।

रिक्शा सड़क की बायी ओर खड़ा हो गया।

हांफते हुए लड़के पास आ गये। बड़े ने शर्मा के मुंह के पास अपना मुंह ले जाकर धीरे से कहा रेल साहब तो मर गये। लोगों की भीड़ लगी हुई है।

सच? शर्मा और उसकी पत्नी के मुंह से एक ही साथ निकला।

हां पापा बड़े ने धीरे से कहा।

पापा! छोटे ने जोर से बोलकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। उन्होंने उसकी ओर आंखें फेरी तो छोटे ने पीछे की ओर अपनी देह को कमान की तरह झुकाकर दाहिना हाथ उठाकर सिर और हथेली से एक ही साथ ऊपर संकेत कर दिया, गये?

शर्मा और उसकी पत्नी ने एक दूसरे की ओर देखा। फिर पत्नी बोली, क्या कहते हो?

शर्मा ने उससे कुछ न कहकर लड़कों से कहा तुम लोग घर जाओ। हम लोग थोड़ी देर में आयेंगे।

रिक्शा मुड़ने लगा तो छोटा बोला, 'मम्मी, हमारे लड्डू?

य रहा, श्रीमती शर्मा ने दोनों उनके हाथ में थमाते हुए धीरे से कहा, छिपाकर ले जाना।

क्यों?' वह बोला 'हम यहीं खा लेते हैं मम्मी। लीजिए, भाई साहब!' कहते हुए जा मिलते लड्डू एक ही साथ मुँह में डालकर वह मुस्करा गया।

रिक्शा आगे बढ़ा तो शर्मा हाथ मलते हुए बोला, 'साला जुर गया!

मेरा तो खयाल है कि तुम्हारा डर ठीक ही था।'

क्या?

हमारी बला रेल साहब को लेकर चली गयी। अब हम कार्ड भी जिता करने की जरूरत नहीं है।' ●

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

अपरिचय का घेरा

वह रेत पर बैठा सिर झुकाये चुप चुप सिसक सिसककर रो रहा था ।

पिछले एक महीने से उसका यही हाल था। रोज शाम को वह यहाँ समुद्र-तट पर एकांत में आ बैठता और सिर झुकाकर चुपचाप रोने लगता। दिन भर की रोकी हुई रुलाई जैसे यहाँ आते ही फूट पड़ती। वह अपने को बिलकुल संभाल न पाता।

कल उसे तनख्वाह मिलेगी। उसने तय कर रखा था कि तनख्वाह मिलते ही वह यहाँ से चला जायगा। यहाँ और अधिक नहीं ठहरा जा सकता। आज उसे खुश होना चाहिए था कि महीना किसी न किसी तरह कट गया कल इस विकट स्थिति से उसे छुटकारा मिल जायेगा। लेकिन आज तो उसे अचानक ही लगा, जैसे उसका दुःख दुगुना हो गया हो। आज वह और दिनों से भी ज्यादा रो रहा था और सोच रहा था कि कल सच ही वह यहाँ से चल पड़ा तो ।

वह घर मां बाप ।

मां कितनी रोयी थी !

उसकी अर्जी का जवाब आया था तो उसने खुश होकर सबसे पहले मां को बताया था—माई, एक काम मिल गया ! कल मैं जाऊँगा !

—कहाँ मिला है भैया ?

—मद्रास में मिला है माई। एक आदमी के यहाँ लड़कों को हिन्दी पढ़ानी है। रहने के लिए कमरा देंगे, भोजन देंगे और तनख्वाह डेढ़ सौ रुपया महीना।

माँ के चेहरे की खुशी अचानक गायब हो गयी थी। पता नहीं उसने उसकी पूरी बातें सुनी भी थीं कि नहीं। उसने आँख झपकाकर कहा था—मदराज तो बहुत दूर है न भैया, रमेसरजी के पास कहीं।

—तो क्या हुआ माई!—उसने माँ को समझाया था—आजकल दूर नजदीक क्या है। रेलगाड़ी पर बैठेंगे और फर फर... तुम बटमारी का इंतजाम करा दो। सुबह रवाना हो जाऊंगा।

वह खुश था कि कहीं भी कोई काम तो मिला। पिछले तीन वर्षों से वह बड़ा परेशान था। उसकी परेशानी तो हाईस्कूल परीक्षा पास करने के बाद ही शुरू हो गयी थी। उसे आगे पढ़ाने की समाति पिता में न थी। वह तो उसने किसी काम की तलाश करते हुए कुछ ट्यूशन और कुछ माँ की सहायता से खींच खाचकर पढ़ाई के चार साल और पूरे कर लिए थे। उस बीच उसने नौकरी के लिए बेहद दौड़ भाग की थी। पढ़ाई में ही वह दो साल और काट ले जाना चाहता था लेकिन ऐसा करना भी तब असंभव हो गया था। उन चार सालों के बीच उसने बहुत कुछ देखा समझा था। जिंदगी की कठिनाई का अहसास बराबर गहरा होता गया था। कहीं आगे कोई रास्ता दिखायी न देता था। दुनिया उसकी बेकारी के अंधकार में ही डूब गयी थी। जैसे अपनों के बीच भी वह बिलकुल अकेला और तिरस्कृत हो गया था।

छुट्टियों में घर जाने पर पहले पिता एक बार तो उससे जरूर नौकरी के बारे में पूछते थे लेकिन फिर उन्होंने यह सवाल भी पूछना बन्द कर दिया था। माँ के प्यार में कोई कमी न आयी थी लेकिन घर में अब उसकी बहुत कम चलती थी। पिता ने मा से भी बोलना बंद कर दिया था और भाई और भाभी की जैसे हमेशा ही माँ से ठनी रहती। एक बार उसने भाभी की जली कटी खुद अपने कानों से ही सुनी थी—वही तो तुम्हारा एक जना है और कोई थोड़े हैं! घर को उसी पर बरबाद कर दो। कौन

प्रस्थान (कविता संग्रह 1984)
सी 50 गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कलेजा फाड फाड के कमाई करता है और जिस पर तुम लुका छिपाकर उडा देती हो हम सब देखते हैं कोई अंधे नही हैं। तुम्हारे गहने सब कहाँ गये हमें मालम है अब हमारे गहनों पर तुम्हारी आख गडी है। घर बरबाद हो गया उसकी पढाई पर और नतीजा क्या निकला ?

क्या सपने थे और क्या हो गया था। किस हौसले से पिता ने उसे हाईस्कूल तक पढाया था। फिर क्या हो गया ? वह रात दिन पडा पडा सोचता रहता था। वह अपने बचपन के साथियों को देखता था और सोचता था वह भी क्या न उन्हीं की तरह चार तक या मिडिल तक की पढाई करके घर के किसी काम धाम मे लग गया। सब तो कुछ न कुछ कर रहे थ। उसकी तरह उनकी बेहयाई और बेकारी की जिन्दगी तो नही थी। किसी स आँख मिलाते भी उसे शम आती।

कही आना जाना किसी स मिलना जुलना किसी से कोई बात करना भी जसे बिलकुल बेमानी हो गया था। उसे दाढी मूछ कपडे लत्ते तक की ओर ध्यान देने की सुध न रह गयी थी। माँ कहती—इतना पढा लिखा होकर भी तू न इस तरह देह क्या छोड दी है भया ? इतने लोगों को काम मिलता है एक तुझे ही नहीं मिलेगा ? विसु भगवान एक दिन किरिपा करेंगे न तू घबराता क्या है ?

उससे कोई जवाब न बनता। अपढ गँवार मा के अथाह विश्वास पर उसे आश्चय होता। लेकिन वह उस अपने किसी काम का न लगता। उसके विश्वास का डोंगा कब का अथाह अंधकार के तल म डूब गया था। उस लगता कि वह अपना यह रूप बनाकर मा को भी दुःखी कर रहा था।

रोज शाम को वह दो मील पदल चलकर कस्बे के वाचनालय जाता सिर्फ अखबार म आवश्यकता के कालम देखकर पते नोट करने। छोटी म छोटी नौकरी के लिए भी अर्जी भेजता। लेकिन कही से कोई जवाब न आता। कही कही स कुछ आता भी था तो वह कितना अजीब होता—घडियाँ, ट्रांजिस्टरों कलमों, कलडरों, रेशमी कपडो आदि की सूचियाँ और अमानत के रुपये जमा करके एजेंसी लेकर रुपये कमाने की सलाह। कभी रुपये कमाने की दूसरी योजनाएँ भी आती।

धीरे धीरे विज्ञापनों पर से भी उसका विश्वास उठता जा रहा था।

लेकिन वह क्या करता ? अर्जियाँ भेजते भेजते थक गया था। मतलब तो एक तिनके के सहारे को भी छोड़कर डूब मरना था।

दिन दिन उसकी हालत बदतर होती गयी थी। मन और शरीर दोनों से वह बिलकुल टूटता जा रहा था। दिमाग पर बोझ रहता। माँ उसकी यह हालत देखकर रो पड़ती थी। लोग उसे अजीब दृष्टि से देखते।

तीन साल इसी तरह बीत गए थे कि अचानक मद्रास से उसे वह पत्र मिला था। एक बार पढ़कर उसे विश्वास न हुआ था। यह कुछ बिलकुल अनहोनी सी बात थी। उसने कई बार पत्र को पढ़ा था और यकीन होने पर वह माँ के पास गया था।

अचानक ही उसे सब कुछ बदला लगा था। चारों ओर उसे रोशनी फैल गयी थी। घर की चुप्पी भी जैसे टूट गयी थी। माई काली मैया का छाक चढ़ा गयी थी। भाभी ने आज कितने दिनों बाद आज उसे सामने बैठाकर पूरी खीर खिलायी थी और हँस हँसकर बात की थी। साथ ही उसे अपनी फरमायशें भी सुनायी थी—छुट्टी में आना तो हमारे लिए मद्रासी साड़ियाँ और बाब की चीज लाना न भूलना।

दद्दा उसे शाम तक दिखायी न पड़े थे। शायद वह रुपया के बंदोबस्त में कहीं गये थे। अक्सर उसे रात को नींद न आती लेकिन आज कुछ और ही बात थी। आज वह जगे जगे बहुत सारे सुंदर सपने देख रहा था।

—सो गए क्या भैया ?

यह किसकी आवाज थी ? कितने दिनों के बाद आज यह आवाज उसके कानों में पड़ी थी। वह चट उठकर बैठ गया था और बोला था—नहीं दद्दा आओ ! तुम कहाँ गये थे ?

उसके पास खटोल पर बैठकर दद्दा ने कहा था—तुम्हारे लिए कर्ज लेने का बन्दोबस्त करने गये थे। अभी तो लौटे हैं। तुम तो सुबह ही जाओगे ?

—हाँ।

—यहीं नजदीक क्या कोई काम मिल ही नहीं सकता भैया ?—दद्दा ने सिर झुकाकर आर्द्र कंठ से कहा था—मद्रास तो बहुत दूर है। क्या हम लोगों ने तुम्हें वनवास देने के लिए ही इतना पढ़ाया लिखाया, भैया ?

अरथान (कविता संग्रह 1984)
सी 50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

वह क्या जवाब देता ? माँ के ऐसे ही सवाल का उसने हट जवाब दे दिया था। लेकिन दद्दा भी यह सवाल करेंगे, वह कब सोचता था।

दद्दा ने ही कहा था—तुम्हारी माई रो रही है। वह कहती है कि हमी लोगों के कारण लड़का वन में जा रहा है। यह दो रोटी खाता था यह भी किसी से न देखा गया।···वह सोचती है कि माँ के ही दिन होता है, बाप-भाई के नही। भैया, क्या थोड़े दिन तक और यहीं आसपास कोशिश करके तुम नही देख सकते ?

—नही दद्दा ! किसी तरह अपने पर काबू रखके उसने कह दिया था—मैंने आप लोगों को बहुत तकलीफ दी।

—हमें तुमने क्या तकलीफ दी है ?—दद्दा ने कहा था—तकलीफ तो तूने खुद उठायी है। तू इतना पढ़ा-लिखा, तुमसे हम अपढ़ गँवार घर की खेती-बारी मे काम करने के लिए कैसे कहते ? पढ़ा-लिखा होकर भी तूने इस तरह देह छोड़ दी थी, हमारी तो समझ में ही न आ रहा था, भैया··· ।

दद्दा अचानक चुप हो गये थे और थोड़ी देर बाद उठकर चले गये थे। उसे लगा था कि दद्दा थोड़ी देर और उसके पास रुके रहते तो वह भी जरूर माँ की तरह ही रोने लगते। वह बड़ी देर तक हतबुद्धि-सा बैठा रहा था।

सुबह भाभी ने अपने हाथ से उसे दही-गुड़ चटाया था और उसके माथे पर हल्दी-दही का टीका लगाया था। माई ने घड़ा भर के दरवाजे पर रखा था। भैया उसका सामान लेकर पहले ही कस्बे के लिए रवाना हो गये थे। उसने सबके पाँव छुए थे। दद्दा ने उसके हाथ में पैसे थमाते हुए पहुँचते ही चिट्ठी लिखने को कहा था। माई कुछ भी न बोली थी। भाभी ने ठिठोली की थी—परदेस जाकर हमें भूल न जाना, भैया !

कस्बे मे बस-स्टैंड पर भैया मिले थे। टिकट के साथ दस-दस के दो नोट उसके हाथ में थमाते हुए उन्होंने कहा था—यह तुम्हारी भौजी ने दिया है। टीसन पर एक जोड़ा कपड़ा खरीद लेना और दाढ़ी भी बनवा लेना। चिट्ठी बराबर देना। माई का हाल तो देखा है न !···एक बात तुमसे और पूछनी है···अब तो तुम्हारा ब्याह ठीक करेंगे न ?

सिर हिलाकर उसने कहा था—नही।

—क्यों ? तुम्हारी यही तो जिद थी कि नौकरी मिलने पर ब्याह

रेंगे ?

—यह कोई नौकरी थोड़े है'''।

—क्या कहता है ?—परेशान होकर भैया ने कहा था—फिर तू इतनी दूर क्यों जा रहा है ?

बस छूटने वाली थी। उसका सामान उठाते हुए भैया ने कहा था—चलो, बैठो। तुम्हारी कोई भी बात हमारी समझ में नहीं आती। खैर, तुम पहुँचते ही चिट्ठी डालना।

बस छूटने पर उसने घर लौटते हुए भैया को अँगोछी से अपनी आँखें पोंछते देखा था।

जाने कितनी बार वह घर से विदा हुआ था, लेकिन ऐसा कभी न हुआ था। इस बार तो उसकी आँखों में भी आँसू उमड आये थे। वह सोच रहा था कि अगर लम्बी बेकारी ने उसे इस तरह तोड़ न दिया होता, तो वह आज इस तरह विदा न होता और न ही इतनी दूर ट्यूशन करने जाता।''' ओह ! अपने लोगों को ही वह कितना गलत समझ बैठा था और किस तरह उसने अपने को सबसे अकेला कर लिया था !

रास्ते भर जैसे एक पश्चात्ताप का बुखार उस पर चढ़ा रहा था। वह उन सबको याद करता रहा, जिनके बारे में, बेकारी के दिनों में उसे लगा था कि वह फिर कभी भी न सोचेगा। बेचारी माँ चलते समय कुछ भी न बोली थी। वह कुछ बोलती तो शायद रो देती। इसी डर से वह कुछ न बोली थी, विदा के समय रोना अशुभ माना जाता है न ! और दद्दा'''दद्दा को रोते उसने कभी भी न देखा था। उसे बार-बार घर और घरवालों की याद आती थी। भाभी ने, जो उसी के कारण भाई से लड़ा करती थी, उसके लिए भैया के हाथ बीस रुपये भिजवाये थे। उसे सब याद आ रहा था। भाभी उसे कितना मानती थी ! माई की तरह ही वह भी लुका-छिपाकर उसे खर्चे के लिए पैसे देती थी। वह उसे 'लछमनजी-लछमनजी' कहकर पुकारती थी और वह उसे भौजी न कहकर 'भाभीजी' कहता था। छुट्टियों में जब वह घर रहता तो वह क्या-क्या न बनाकर उसे खिलाती। वही

प्रधान (कविता संग्रह : 1984)

: सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

भाभी, जो उसकी बेकारी के दिनों में···अब फिर बदल गयी है, उसे विश्वास न हो रहा था। वह सोच रहा था कि उसके व्यवहारों में परिवर्तन के पीछे भी शायद कोई नासमझी ही हो। लेकिन माई···माई के व्यवहार में कोई परिवर्तन क्यों न आया? क्या माई और उसके बीच कोई नासमझी नहीं थी? नहीं थी, तो क्यों? क्या माई उन लोगों से ज्यादा समझदार थी···और उसका सारा सोचा-विचारा अचानक गडमड हो जाता।

मद्रास स्टेशन पर वह उतरा था, तो सहसा उसे लगा था कि वह एक नयी दुनिया में आ गया हो। भारी शोर और भीड़, लेकिन कितना अपरिचित! मन में एक अजीब अपरिचय की व्यग्रता खलबलाने लगी थी। उसने ऐसी स्थिति की कल्पना तो कभी की ही नहीं थी।

एक बड़ी कोठी के पोर्टिको में वह रिक्शे से उतरा था, तो एक नौकर ने आकर उससे क्या पूछा था, उसकी समझ में न आया था। उसने चिट्ठी निकालकर उसके हाथ में थमा दी थी। नौकर चिट्ठी लेकर कोठी के अंदर चला गया था।

थोड़ी ही देर में नौकर फिर बाहर आया था और उसका सामान उठाकर, उसे आने का संकेत कर फाटक के पास के एक कमरे में ले गया था। फर्श पर सामान रखते हुए नौकर ने कुछ कहा था और एक दरवाजे की ओर संकेत करके बाहर चला गया था।

एक ओर बिछी हुई चटाई पर वह निर्जीव-सा बैठ गया था। उसके मुँह में जबान जैसे सूख रही थी। वह सोच ही न पा रहा था कि भला ऐसे यहाँ कैसे काम चलेगा? आदमी बिना बोले और किसी की बात समझे कैसे रह सकता है? उसे अचानक द्वीप पर पड़े क्रूसो की याद आ गयी थी।

थोड़ी देर बाद वही नौकर उसके लिए चाँदी के गिलास में कॉफी और चाँदी की तश्तरी में कुछ खाने का सामान सामने रखकर चला गया था। कुछ खाने-पीने को उसका जी न हो रहा था। कॉफी और नारियल के तेल की तेज गंध उसे बड़ी नागवार लग रही थी।

तभी एक बारह-तेरह साल की गोरी-चिट्टी सुंदर लड़की, रेशमी

घाघरा और ब्लाउज पहने, कंधों के नीचे दो बड़ी-बड़ी चोटियाँ लटकाये, दाँतो में अँगुली दबाये उसके सामने आ खड़ी हुई थी और अंग्रेजी में बोली थी, 'उधर बाथ है, आप हाथ-मुँह धोकर कॉफी पी लें। पिताजी चार बजे कचहरी से आयेंगे और आप से बात करेंगे। असुविधा के लिए हमें क्षमा करें, शायद आप यहाँ की भाषा न समझते हो।'

यह कहकर वह शर्मायी हुई-सी चली गयी थी। शायद इतना ही कहने के लिए वह उसके पास आयी थी। इतनी-सी बात भी जैसे उसमें एक जान डाल गयी थी। उसने बाथ में जाकर हाथ-मुँह धोया था और कॉफी पीने बैठ गया था। जैसे लड़की के कह जाने के बाद यह सब करना उसका कर्तव्य हो गया हो।

समय का उसे ठीक-ठीक अदाज न हो रहा था। लेकिन बड़ी देर बाद वही नौकर आकर उसे अदर ले गया था। कमरे में कई लोग बैठे हुए थे। उसने कमरे में प्रवेश करते ही हाथ जोड़े थे। और एक प्रौढ आयु के सज्जन ने उसे एक कुर्सी पर बैठने का सकेत किया था। वह बैठ गया था तो सज्जन ने अंग्रेजी में पूछा था—हमारा घर खोजने में कोई कठिनाई तो नही हुई?

उसने केवल 'ना' में सिर हिला दिया था।

—आपको यहाँ कैसा लग रहा है?—उन्होंने पूछा था।

वह क्या जवाब देता? उसने फिर 'ठीक ही है' में सिर हिला दिया था। तो उन सज्जन ने दूसरे लोगों की ओर देखते हुए बताया था—बड़ा अजीब लगता है साहब! पिछले साल हम लोग तीर्थ करने उत्तर गये थे न, वड़ा विचित्र लगा था। आप खुद सोचिये कि तब आपको कैसा लगेगा, जब कोई आपसे कुछ कह रहा है और आप कुछ समझ ही नही पा रहे हैं या आप किसी से कुछ कह रहे है और वह कुछ समझ ही नही पा रहा है। ऐसी दिमागी उलझन होती है कि मैं आपको क्या बताऊँ।

—अंग्रेजी से तो कुछ काम चल जाता है?—एक दूसरे सज्जन ने पूछा था।

—नही, अंग्रेजी आखिर कितने लोग जानते हैं?—उन सज्जन ने कहा था—कुली, रिक्शे, टाँग, नाव, टैक्सी वाले अंग्रेजी क्या जानें। दूकानदार भी कितने अंग्रेजी जानते हैं? नही साहब, अंग्रेजी से काम नही चलता।

मैंने तो तय किया था कि अगर फिर कभी उत्तर जायेंगे तो थोड़ी-ब हिंदी सीखकर ही जायेंगे। इसी तरह मेरा कहना है कि अगर कोई उत्तर से दक्षिण आता है तो उसे भी यहाँ की कोई भाषा थोड़ी-बहुत सीखकर ही आना चाहिए। इससे वैसा अजनबीपन तो न लगेगा।

वह फिर उसकी ओर मुखातिब हुए थे—आपकी परेशानी को मैं समझ सकता हूँ। आपके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर मेरे एक मित्र रहते हैं, वह श्रमिकों के नेता हैं। काफी दिन तक वह बंबई मे रह चुके हैं। उनके बाल-बच्चे थोड़ी हिंदी जानते हैं। उनसे मैं आपका परिचय करा दूंगा। कभी-कभी आप उनके यहाँ आया-जाया कीजियेगा। *फिर यहाँ हिंदी का प्रचार करने वाली एक संस्था है, वहाँ भी आप आ-जा* सकते हैं। दरअसल बहुत दिन तक अपनी भाषा बोले या सुने बिना मनुष्य की आत्मीयता नष्ट हो जाती है।

थोडी देर के लिए वहां खामोशी छा गयी थी। फिर वही सज्जन बोले थे—आप थोड़ा धैर्य से काम लीजियेगा और यहाँ की भाषा सीखने की कोशिश कीजियेगा। फिलहाल आपको हमारे यहाँ एक लड़की को ही हिंदी *पढानी है। अगले साल वह कैंब्रिज परीक्षा में बैठेगी।* उसने हिंदी ले रखी है। एक घंटा सुबह और एक घटा शाम पढ़ाना काफी रहेगा। उससे आप हमेशा हिंदी मे ही बात कीजियेगा और उसे भी हिंदी बोलने को उत्साहित कीजियेगा। मैं चाहता हूँ कि वह हिंदी का सही लहजा पकड़ सके, इसीलिए इतनी दूर से आपको मैंने बुलाया है, वरना यहाँ भी कितने ही हिंदी पढाने वाले है। एक मेरा अपना स्वार्थ भी है। मैं भी कभी-कभी फुर्सत मिलने पर आपसे हिंदी सीखूंगा और गोस्वामी तुलसीदास की रामायण सुनूंगा। अब आप जाइये, समुद्र की ओर घूम आइये, यहाँ से पास ही है। कल से आप काम शुरू कीजियेगा।

वह उठकर कमरे से बाहर निकला ही था कि कमरे से एक सज्जन उसके पास आये थे और उसे फाटक तक लाकर उन्होंने समुद्र तक जाने का रास्ता समझाते हुए कहा था—यहाँ से मुश्किल से पंद्रह मिनट का रास्ता है। आप समुद्र का शोर सुन रहे है न?

इस समय कही भी आने-जाने को उसका मन न हो रहा था।। लेकिन

अब वह कैसे न जाता ? उसे आश्चर्य हो रहा था कि इस समय जो एक तूफान आने का-सा शोर अचानक सुनायी देने लगा था, वह उसे पहले क्यों न सुनायी दिया था ? वह शोर तो लगातार आ रहा था, उसकी दिशा भी स्पष्ट थी। वह सिर झुकाये हुए फुटपाथ पर चला जा रहा था। मन मे जो एक उलझन शुरू हुई थी, वह, उसे लग रहा था, लगातार बढ़ती जा रही थी। वह सज्जन बहुत अच्छे आदमी मालूम होते थे। न जाने उन्होने कैसे उसके मन के भाव को समझकर उसके साथ सहानुभूति दिखायी थी। लेकिन उसकी समझ मे यह नही आ रहा था कि यहाँ कैसे चलेगी ? सिर्फ दो घटे पढ़ाने का काम। बाकी समय कैसे कटेगा ?

शोर बढ़ता जा रहा था। उसने सिर सामने उठाकर देखा तो घने बादल उमडते आ रहे थे। वह फुटपाथ के एक पोर्टिको मे रुककर वर्षा का इंतजार करने लगा था, लेकिन वर्षा नहीं आयी।

वह सड़क से नीचे उतरा था। उसे पाँवों के नीचे रेत का अहसास हुआ था और वह बिलकुल हतबुद्धि हो सामने देखता रह गया था। समुद्र अपने रूप-आकार मे उसके सामने था, लेकिन उसकी निस्सीम विराटता जैसे उसके दिमाग मे समा ही न रही थी।

दूसरे दिन से उसने लड़की को पढ़ाना शुरू कर दिया था। यह वही लड़की थी, जो पहले दिन उसके कमरे मे कॉफी पीने को कहने आयी थी। वह बड़ी ही तेज और चचल थी। वह अपनी ठीक मन.स्थिति मे होता तो उसे पढ़ाने मे उसे बड़ा मजा आता। लेकिन वह किसी भी तरह अपने को सतुलित कर ही न पाता था। उसके दिमाग पर अपरिचय का बोझ सदा लदा रहता। वह कोशिश करके अपना मन किस तरह लगाये, यह सभव ही न हो पा रहा था।

एक दिन उन्ही सज्जन ने, जो लड़की के पिता थे, उसे अपने कार्यालय मे बुलाया था और उसे बैठाकर उसकी बगल मे बैठे हुए आदमी से परिचय कराया था—यह डॉक्टर वेंकय्या है, वही मजदूरो के नेता, जिनके बारे मे मैंने तुमसे जिक्र किया था।

उसने हाथ जोड़कर उन्हे नमस्कार किया था, तो उन्होंने भी अग्रेजी मे ही बोलना शुरू किया था—वकील साहब बता रहे थे कि तुम्हारा मन

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
: सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

यहाँ नहीं लग रहा है। अरे भाई, तुम अपने देश में हो, कोई विदेश में थोड़े हो। हमारे देश की अनेकता में एक गहरी आंतरिक एकता है।

—अरे-अरे आप तो बेचारे को भाषण ही पिलाने लगे।—सज्जन ने उन्हें रोकते हुए कहा था—मैं तो चाहता था कि···।

—तो ठीक है,—डॉक्टर वेंकय्या ने उससे कहा था—तुम हमारे यहाँ आया-जाया करो। चाहो तो हमारे लड़के को भी हिंदी पढ़ा दिया करो। हम वकील साहब के बराबर तो पैसे तुम्हें नहीं दे सकते, फिर भी कुछ-न-कुछ तो देंगे ही। हम मेहनत का मूल्य समझते हैं···।

—अरे भाई!—सज्जन ने उन्हें फिर टोक्कर कहा था—मैं चाहता था···।

—हाँ-हाँ!—डॉक्टर वेंकय्या ने फिर उससे कहा था—तुम हमारे यहाँ आया करो। वहाँ हमारे बच्चों के साथ अपना मन बहलाया करो। वे बंबइया हिंदी बोल लेते हैं···।

डॉक्टर वेंकय्या की बातों से ही उसका पेट भर गया था, वह उनके यहाँ क्या करने जाता? उसी दिन शाम को समुद्र तट पर रोते हुए उसने निश्चय किया था कि तनख्वाह मिलते ही वह यहाँ से चल देगा।

आज तो उसे इस तरह रोने की बजाय खुश होना चाहिए था। लेकिन···।

अपने लोगों और घर-गाँव की परिक्रमा करने के बाद जब उसका मन वापस लौटा, तो उसे लगा कि यदि काम छोड़कर वह गाँव लौटा, तो शायद उसके अपने लोग फिर से उसके लिए वैसे ही अपरिचित हो जायेंगे, जैसे उसकी बेकारी के दिनों में हो गये थे। अचानक उसका दु:ख दुगुना हो गया। वह और दिनों से भी कहीं ज्यादा रोने लगा। उसे आज यह पहली बार अनुभव हुआ कि वह अपरिचय के एक ऐसे घेरे में घिर गया है, जिससे उसे शायद कभी भी छुटकारा न मिले।

वह उठकर खड़ा हुआ तो उसकी आँखों के आँसू उसी तरह सूख गये थे, जैसे उसके पाँवों के नीचे समुद्र-तट के ऊपर की रेत···।

समुद्र का हाहाकार बढ़ गया था। ●

अफसर, बीवियाँ और मेरे मित्र की कहानी

फाटक से बाहर निकलते ही मेरा मित्र ठहाका लगाकर हँस पड़ा और फिर बोला, 'देखा तुमने ? कुछ समझा भी ?'

मैंने देखा था और जो-कुछ समझा था, वह कुछ इस तरह हँसने की बात नहीं थी। वह एक निहायत शर्मनाक बात थी, जिसे देख-समझकर किसी की भी गर्दन शर्म से झुक जाती। मैं मन-ही-मन बहुत दुखी था। मित्र की हँसी से मुझे कितना क्षोभ हुआ, सहज ही समझा जा सकता है। लेकिन अपने इस मित्र के आगे क्षोभ प्रकट करना व्यर्थ है, मैं अच्छी तरह जानता था। मेरा यह मित्र निहायत बेशर्म आदमी है। दूसरों की ही नहीं, अपनी बेशर्मी पर भी वह इसी तरह हँसा करता है। सारी शर्म-हया जैसे वह घोलकर पी चुका है। कहता है, 'किस-किस बात पर शर्म की जाये ? हमारे जीवन में शर्मनाक बातों के सिवा रह ही क्या गया है ? अगर हर शर्म पर गर्दन झुका ली जाये तो गर्दन उठाने की कभी नौबत ही न आये। फिर किसी भी बात पर शर्म करने से क्या लाभ ? शर्म महसूस करके भी क्या कोई शर्मनाक काम करना छोड़ देता है ?···यार, यह हमारी दुनिया ही ऐसी है कि यहाँ अगर तुम अपने जीवन में सफल होना चाहते हो, तो एक-से-एक बढ़कर शर्मनाक काम करो और अपनी गर्दन सबसे ऊँची उठाकर

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)

सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

चलो !'

शैतानियत का भी एक दर्शन होता है। आदमी दिल को कैसे मिटा देता है, देखना हो तो मेरे मित्र को देखिये। अब यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि मेरा मित्र एक सफल आदमी है। और एक सफल आदमी की बात हमेशा ऊँची रहती है, यह तो आप जानते ही हैं।

मुझे चुप देखकर मेरा मित्र बोला, 'अनुभव प्राप्त करना इसी को कहते हैं। एक कहानी का कैसा उम्दा मसाला मिल गया। इस पर वह कहानी लिखूँगा कि पढ़कर कितनों का दिमाग साफ हो जायेगा।···और एक तुम हो कि मनहूस की तरह घर में बैठे रहते हो, न किसी से मिलना, न जुलना। कहो, अब तो मेरे साथ यहाँ आने का तुम्हें कोई अफसोस नहीं रहा न? मुझे तो बस मजा ही आ गया !' कहकर उसने बच्चों की तरह नाचकर ताली बजायी।

हम सड़क के चौराहे की ओर बढ़ रहे थे, जहाँ ऑटोरिक्शा मिलता। रात के करीब दस बज चुके थे। सड़क सूनी थी, लेकिन उस पर बने अफसरों के अनगिनत बंगलों से एक ही साथ रेडियो सीलोन का फड़कता हुआ गाना ऊँचे स्वरों में आ रहा था। कानों में स्वर तो बरबस पड़ रहे थे, लेकिन शब्द अस्पष्ट थे। भारी मन, मेरा कुछ बोलने का मन न हो रहा था। सोच मैं कुछ जरूर रहा था, लेकिन वह सब मेरे मित्र के लिए व्यर्थ था, इसलिए उसे शब्द नहीं दिया जा सकता था।

मित्र ही बोला, 'भाई, यही मुझे पसंद नहीं ! एक लेखक को तो [illegible] होना चाहिए—डिटैच्ड ! एक डॉक्टर अगर रोगी का दुख स्वयं अनुभव करने लगे तो वह रोगी का इलाज क्या खाक करेगा ? तब तो [illegible] भी एक बिस्तर रोगी की बगल में बिछा देना पड़ेगा ! यह [illegible] जीवन की कोई घटना देखी और वह उसी में डूबकर, [illegible] गया ? तब वह उस घटना से अलग-थलग रहकर [illegible] है ? यार, मुझे तो उन लोगों पर तरस आता है, जो [illegible] दूसरे को देखकर रोने लगते हैं, वे यह भी [illegible] रहे हैं !' और वह फिर हँस पड़ा।

जाने की उसमें सामर्थ्य नहीं।

मेरा मित्र आगे बोला, 'मेहनत चाहे जितनी पड़े, मैं चीज ए-वन बना दूंगा। अपने-अपने हाथ की बात है। तुम कहते हो कि इस विषय पर कई कहानियाँ पढ़ चुके हो। लेकिन जब मैं लिखूंगा तो देखना! पुरानी थीम को भी नया बना देना मेरे बायें हाथ का खेल है।'

हर काम उसके बायें हाथ का खेल है। वह कहता है कि जो भी काम वह हाथ में ले-ले, उसे, जैसे भी हो, वह जरूर पूरा कर लेगा। उसको सब हथकंडे मालूम हैं। आज वह एक सफल लेखक बन गया है, अगर वह डॉक्टर बनना चाहता तो भी इतना ही सफल होता। उसने सफलता प्राप्त करने की कला सिद्ध कर ली है।

जिस आदमी को अपनी शक्ति में इतना विश्वास हो, मेरे देखने में, उसे शैतान बनने के लिए और कुछ नहीं चाहिए। लेकिन मेरे मित्र से यह बात कहिये तो वह अपनी पेटेंट हँसी हँसकर कहेगा, 'बड़े आये देवता कहीं के! मैंने एक-एक साले को देख लिया है! कोई आये न देवता बन के मेरे पास, तब मैं उसे बताऊँ!'

देवता का मतलब उसके यहाँ मूर्ख है और वह मूर्ख नहीं है, इसे स्वीकार करने में उसे कोई हिचक नहीं, क्योंकि अगर वह मूर्ख होता तो निश्चय ही उसको जीवन में वह सफलता नहीं मिलती, जिसे प्राप्त कर वह किसी को भी किसी बात में मुँह नहीं लगने देता।

मैंने उसे चुप करने के लिए मान लेना ही बेहतर समझा, 'भाई, इससे किसे इनकार है कि तुम्हारे हाथ में जादू है, तुम जो न कर दिखाओ, कम है।'

वह अट्टहास कर उठा। बोला, 'इसीलिए तो कहता हूँ कि तुम मेरी शागिर्दी कर लो', चुटकी बजाकर उसने कहा, 'मैं तुम्हें यों चमका दूंगा! तुमने कुछ बहुत ही अच्छी कहानियाँ लिखी हैं, लेकिन सिर्फ अच्छी कहानियाँ लिखने से क्या होता है? जरूरत तो इस बात की है कि उन्हें चमकाया जाय। देखो, ईमानदारी और नैतिकता को चाटकर भूख क्या, प्यास भी नहीं बुझ सकती। आवश्यकता यह है कि तुम अपने स्वार्थ के प्रति हर क्षण चौकन्ने रहो और जैसे भी हो उसे साधने की चिंता में हर क्षण पिले रहो।

यही देखो, हम इस अफसर से मिलने आये। तुम शायद कुछ दुःख लेकर वापस जा रहे हो और मैं दोनों हाथ में लड्डू लेकर जा रहा हूँ। अफसर को खुश किया और साथ ही एक कहानी की उम्दा थीम भी मिल गयी। सवाल केवल अपने-अपने एप्रोच का है। तुम भी चाहो तो…'

मैं तो उस अफसर के यहाँ जाना ही नहीं चाहता था। किसी भी अफसर के यहाँ मिलने जाने का कोई अर्थ मेरे लिए नहीं है। मेरे यहाँ मेरा मित्र शाम को आया था और अफसर के यहाँ चलने को कहा था, तो मैंने उससे यह बात साफ-साफ कह दी थी। लेकिन किसी की बात मानने वाला मेरा मित्र नहीं है। वह सीधे अपने काम से मतलब रखता है और उसे पूरा करने के लिए किसी को भी अपना मोहरा बना लेता है। उससे किसी भी प्रकार का संबंध रखने वाला जो भी हो, उसे वह इस्तेमाल कर ही लेता है। आप अपनी भलमनसाहत में, मुरव्वत में, या यह सोचकर कि मेरा क्या बिगड़ता है, उसकी बात मान जायेंगे और वह अपना काम बना लेगा। किसी भी नये आदमी से मिलना हो तो वह अकेले उससे नहीं मिलता, अपने साथ एक अरदब जरूर ले जाता है, जिससे वह यह उम्मीद रखता है कि वह उसका परिचय उस नये आदमी को दे देगा और फिर वह सारा मैदान अपने हाथ में ले लेता है, यहाँ तक कि वह अपने साथी का परिचय देना भी भूल जाता है।

वह बोला था, 'जरा चलो, यार, इस नये अफसर से मिल आयें। इसकी जगह पर जो पहले थे, वह तो मेरे बड़े मित्र बन गये थे, उनसे बड़े-बड़े काम निकाले मैंने। जाने यह कैसा है।'

मैंने पूछा, 'कोई काम है उनसे तुम्हें ?'

उसने कहा, 'नहीं, अभी तो कोई काम नहीं है। लेकिन आगे भी नहीं होगा यह अभी कैसे कहा जा सकता है ? इसीलिए पहले ही से मैदान बना लेना अच्छा होता है। आज थोड़ी फुरसत है, सोचा उससे मिल ही आऊँ।'

'तो जाओ, मैदान बनाओ। मुझे क्यों घसीट रहे हो ? तुम तो जानते

ही हो, किसी भी अफसर से मुझे कोई काम नही रहता। मैं···।'

वह बोला, 'मैं जानता हूँ। लेकिन मित्र का काम भी तो अपना ही काम है। बस, तुम्हारा आधा घंटा मैं लूंगा। वहाँ बैठेंगे नही। अभी तो बस परिचय ही करना-कराना है। तुम दो शब्दो मे उसे मेरा परिचय दे देना। यों अपनी किताबों का एक सेट भी मैं उसे भेंट करने को लाया हूँ।'

'भई···।'

'देखो आनाकानी मत करो। बस, उठ चलो मेरी खातिर !' और उसने मेरी बाँह पकड ली।

मुझे उठना ही पडा। मेरे मित्र से किसी के लिए भी एकदम ना कह देना कठिन काम है। अगर किसी कमबख्ती के मारे ने ना कह दी तो उसकी खैरियत नही। मेरा दोस्त उसके पीछे पड जायेगा और उसका कोई भी नुकसान वह कर या करा सकता है। इसके लिए वह बदनाम है, लेकिन इस बदनामी से उसे लाभ ही होता है।

अफसर के यहाँ पहुँचे तो उसके फ्लैट का बाहरी दरवाजा बंद था, लेकिन अंदर से रोशनी झाँक रही थी। मेरे मित्र ने काल-बेल का बटन दबाया और एक ओर होकर अपनी टाई की गाँठ ठीक करने लगा।

दरवाजा खुला और अदर से आने वाली रोशनी मे अभिनेता की तरह एक लहीम-शहीम, खूबसूरत-सा, अधेड आयु का आदमी पैंट और बुशर्ट पहने आ खडा हुआ। बोला, 'मैं वर्मा हूँ। आप·· '

मेरा मित्र हाथ जोड़कर बोला, 'नमस्कार ! आप ही के दर्शन···।'

'आप लोग ?' अफसर ने प्रत्युत्तर मे हाथ जोड़कर पूछा, तो मैंने देखा, उसके हाथ जरा काँप गये और उसकी नशे से भरी लाल आँखें झपक गयी।

मेरे मित्र ने अपना जूता मेरी चप्पल पर रखकर हल्के से दबाया। और मैं एक रिकार्ड की तरह बोल उठा, 'आप हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री शालीनजी हैं। इनकी 51 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है···।'

'नाम जरूर सुना-सा लगता है। आइये, अदर आइये आप लोग। क्या बतायें, हमारा काम ऐसा है कि कुछ पढने का अवसर ही नही मिलता·· ।' और वह डगमगाते कदमो से अंदर की ओर मुडा।

अरघान (कविता संग्रह : 1984)
सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

ड्राइंगरूम में घुसे तो वही दो मूर्तियाँ पहले से ही विराजमान थीं और बीच की मेज पर पीने और खाने की कुछ चीजें रखी हुई थीं। अफसर ने परिचय कराया, 'ये मेरे असिस्टेंट हैं और वह इनकी श्रीमतीजी···मैं तो, शायद आप लोगों को मालूम न हो, बाल-विधुर हूँ !' और वह जोर का ठहाका लगाकर हँस पड़ा।

मेरे मित्र ने उसका हँसने में साथ दिया।

'और मैं हूँ शालीन, एक अदना साहित्यकार···।' मेरे मित्र ने कहा और बगल से किताबों का एक पुलिंदा निकालकर अफसर से मुखातिब हुआ, 'ये मेरी कुछ पुस्तकें हैं, आपके लिए लाया हूँ।'

फिर मेरे मित्र ने बाकायदा एक-एक किताब निकालकर, उसका विस्तृत परिचय दे-देकर अफसर के हाथ में देना शुरू किया। अफसर ने दो-चार किताबों के साथ तो जबरन दिलचस्पी दिखायी, फिर हूँ-हूँ करता रहा। लेकिन मेरे पट्ठे ने बीच में ही पर्दा गिराना नहीं जाना है। उसका कौल है कि सुनने वाले की परवाह किये बिना अपनी पूरी बात कहकर ही दम लो, कुछ-न-कुछ बातें तो उसके कान में पड़कर ही रहेंगी।

जब यह नाटक खत्म हुआ, तो मुझे ऐसा लगा कि कहीं यह अफसर मेरे मित्र को धक्के लगवाकर बाहर न निकाल दे। अफसर के तने हुए चेहरे पर क्षोभ का जैसे तांडव हो रहा था।

अफसर ने सिर झुका लिया तो मेरा मित्र उसके असिस्टेंट की ओर मुड़ा, 'तो आप···।'

अफसर ने अचानक सिर उठाकर मेरे मित्र की बात काट दी, '[illegible] भला किताबों से क्या शौक हो सकता है ! हां, इनकी श्रीमतीजी को [illegible] दिलचस्पी है। ये तो अभी कह रही थीं कि ये कविताएं लिखती हैं।'

'अच्छा', अब मेरा मित्र उन श्रीमतीजी की ओर [illegible] हुआ। [illegible] आप···।'

'लेकिन, शालीनजी !' अफसर का खुर्राटपन [illegible] में बिजली की तरह कौंध उठा, 'सच पूछिये तो [illegible] में बिलकुल नहीं आती। हां, औरतें मुझे बहुत [illegible] हैं। [illegible] पोशाक कैसी लगती है ?'

'मुझे···मुझे·· जी, मुझे तो यह पोशाक बहुत अच्छी लगती है', मेरे मित्र ने ऐसे कहा, जैसे इन थोड़े-से शब्दों को कहने के बीच उसे बहुत सोचना पड़ गया हो।

प्रौढ़ आयु की श्रीमतीजी के फूले-फूले गाल एक षोडशी की तरह लाल हो उठे।

मैंने उनकी पोशाक की ओर देखा, वह राजधानी में कहीं भी देखी जा सकती थी। दुपट्टा सोफे के हत्थे पर पड़ा हुआ था। मैंने देखा, असिस्टेंट का सिर तो जैसे गर्दन से टूटकर उसकी छाती पर लटक गया हो।

अफसर बोला, 'तब तो आपकी श्रीमतीजी भी यह पोशाक जरूर पहनती होंगी ?'

'जी···हाँ', मेरे मित्र का गला जैसे खुश्क हो गया हो।

'तो उनको भी कभी लाइये न। लेकिन इसी पोशाक में', अफसर ने कहा, 'देखिये, दुपट्टा मुझे बिलकुल पसंद नहीं, चाहे वह हवा का ही क्यों न बना हो ! और साहब, जो बात प्रौढ़ महिलाओं में होती है, वह तरुणियों और युवतियों में कहाँ ? तो लायेंगे न ?' कहकर अफसर ने घूरकर मेरे मित्र की ओर देखा।

असिस्टेंट की छाती पर लटका हुआ सिर जैसे सहसा उठकर उसकी छाती पर तन गया। मेरे मित्र ने जैसे कुछ घोटकर कहा, 'जरूर लाऊँगा, जी !'

जाने असिस्टेंट की श्रीमतीजी ने अफसर की इस बात का क्या अर्थ लगाया कि वह जोर से हँस पड़ी। मेरे मित्र से वह बोली, 'आपकी सफलता के विषय में मैंने बहुत सुना है। यह भी सुना है कि आपकी सफलता में आपकी पत्नी का बहुत बड़ा हाथ है···'

अफसर ने भी अपने असिस्टेंट की श्रीमतीजी की ओर देखकर ठहाका लगाया और हँसते हुए ही कहा, 'सफलता की कुंजी आजकल बीवियों के ही हाथ में है ! हा-हा-हा ! आइये, बीवियों के स्वास्थ्य के लिए हम एक-एक पेग लें।'

मैंने आपको वह घटना सुना दी। लेकिन केवल घटना से कोई कहानी नहीं बनती। इस घटना के आधार पर कहानी बुनेगा मेरा मित्र, जो सबसे अच्छी पत्रिका में प्रकाशित होगी। आपसे मेरा अनुरोध है कि वह कहानी आप जरूर पढ़ें और उसकी प्रशंसा में दो शब्द अवश्य मेरे मित्र को लिखने की कृपा करें। ●

श्रम

उसके हाल से शहर के बुद्धिजीवियों के बीच एक अजीब-सी सनसनी फैल गयी, गोकि वैसा कुछ होना आज के हमारे समाज में न तो कोई अनहोनी है और न आश्चर्यजनक। फिर भी बुद्धिजीवी बुद्धिजीवी ठहरे। समाज के सर्वसाधारण लोगों से हटकर वे आचरण न करें, तो उन्हें बुद्धिजीवी कौन कहे? वह भी एक बुद्धिजीवी था। अपनी बिरादरी के एक आदमी का ऐसा हाल हो गया है, यह जानकर बुद्धिजीवियों का उसके प्रति थोड़ा-अधिक भावुक हो उठना जाति-बिरादरी के ढांचे वाले हमारे समाज में स्वाभाविक ही था, इतना तो अबुद्धिजीवी प्रेस-व्यवसायी भी स्वीकार करते थे, किंतु इस बात को एक सनसनी की हद तक खींच ले जाना उन्हें कुछ कवियों का ही-सा काम लगता था। बुद्धिजीवियों को उनके इस कथन पर घोर आपत्ति थी और इसी बात को लेकर शहर की सडकों पर उनके बीच विवाद छिड़ जाता था।

असल बात यह थी कि उस बुद्धिजीवी का शहर के अबुद्धिजीवी प्रेस-व्यवसायियों के साथ बड़ा ही गहरा संबंध था। वह एक बडी सीमा तक उन्हीं पर अवलंबित था। वह जो-कुछ बना था, उसमें उनकी कृपा और सहयोग का बड़ा हाथ था।

81

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)

सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

वह शहर के पास ही एक गाँव का रहने वाला था। उसके पिता एक बहुत ही साधारण किसान थे, जिनकी मृत्यु उसके बचपन में ही हो गयी थी। माँ बड़ी ही साहसी, परिश्रमी और शरीर और दिल से बड़ी ही मजबूत स्त्री थी। उसने अपने इकलौते बेटे का पालन-पोषण बड़े धैर्य के साथ किया। उसने उसे पढ़ने के लिए स्कूल भेजा। लड़का चेहरे से जितना बदसूरत था, दिमाग से उतना ही तेज निकला। पिताहीन होने के कारण उसे सहज ही सबकी सहानुभूति मिली। वह पढ़ता गया। उसे छात्र-वृत्ति मिलती गयी। फीस माफ होती गयी। गाँव के प्रारंभिक स्कूल से वह पास के कस्बे के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में पहुँचा और फिर वहाँ से शहर के विश्वविद्यालय में। कस्बे से ही उसने ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया था। ट्यूशन से जो मिलता, उसी से वह अपना खर्च चला लेता था। वर्ष में एक मुश्त जो छात्र-वृत्ति मिलती थी, उसे वह माँ के हाथ में रख देता था। माँ उस पैसे को और किसी चीज में खर्च न कर उससे खेत का टुकड़ा खरीद लेती।

शहर में वह एक बहुत ही मामूली कमरे में रहता था और सस्ते होटल में खाना खाता था। एक ट्यूशन से शुरू करके वह आठ-आठ ट्यूशन करने लगा था। ट्यूशन पढ़ाने में वह इतनी मेहनत करता था कि लड़के-लड़कियों के अभिभावक उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। जल्दी ही उसने माँ से पूछकर एक साइकिल खरीद ली। लोगों का कहना था कि साइकिल खरीदते ही जैसे उसके पाँवों में पंख लग गये। अब ट्यूशनों के अतिरिक्त वह एक और काम भी करने लगा, प्रेसों के प्रूफ पढ़ने का। एक अभिभावक ने, जो एक प्रेस का मालिक था, एक दिन उससे कहा—मास्टर साहब, हमारा प्रूफ रीडर छुट्टी पर चला गया है। क्या आप एक-दो घंटा हमारे यहाँ प्रूफ पढ़ दिया करेंगे?

उसने जवाब दिया—मुझे प्रूफ पढ़ने का तो कोई अनुभव नहीं है।

मालिक ने इस पर कहा—उसमें अनुभव की कोई जरूरत नहीं है। बस, गलतियों को मार्क कर देना है। एक-दो पृष्ठ मैं स्वयं करके आपको दिखा दूँगा। कुछ चिह्न हैं, आपको समझा दूँगा। कुछ भी समझते आपको देर न लगेगी। हमारा प्रूफ रीडर तो दर्जा आठ पास है। आप किस समय

बैठ सकते हैं, बता दीजिये ?

—रात के दस बजे के पहले तो मुझे फुरसत नहीं है। साढ़े नौ बजे मेरा आखिरी ट्यूशन खत्म होता है। उसके बाद मैं होटल खाने जाता हूँ।

—यह समय तो ठीक नहीं रहेगा—मालिक ने जरा देर सोचकर कहा—फिर आप ऐसा कीजिये। शाम को हमारे यहाँ ट्यूशन पढ़ाने के बाद आप प्रूफ ले लिया कीजिये और उन्हें अपने घर पर पढ़कर सुबह आठ बजे से पहले हमारे यहाँ पहुँचा दिया कीजिये।

—हाँ, ऐसा हो सकता है। लेकिन मुझे प्रूफ पढ़ने का मेहनताना क्या मिलेगा ?

—एक पृष्ठ का एक आना। एक पृष्ठ पढ़ने में मुश्किल से आपके दो मिनट लगेंगे। ट्यूशनों से कहीं अच्छा मेहनताना रहेगा।

—तो फिर दे दीजिये। कुछ पहले के पढ़े हुए प्रूफ भी हों, तो दीजिये। उन्हें देखकर मैं समझ लूंगा कि कैसे प्रूफ पढ़ा जाता है।

यह काम शुरू करते ही उसके दिनों की लंबाई लगातार बढ़ती गयी। पहले उसकी सुबह चार बजे होती थी और शाम दस बजे। और अब उसकी सुबह तो चार बजे ही होती, लेकिन शाम कभी रात को बारह बजे, कभी दो बजे और कभी-कभी तो ऐसा भी होने लगा कि शाम होती ही नहीं और सुबह हो जाती।

असल बात यह हुई कि उसने हिसाब लगाकर देखा, तो प्रूफ पढ़ना ट्यूशन पढ़ाने से कहीं अधिक लाभदायक मालूम पड़ा। उसने निश्चय किया कि धीरे-धीरे वह प्रूफ का काम बढ़ाता जायेगा और एक-एक कर ट्यूशन छोड़ता जायेगा। वह प्रेसों में और प्रकाशकों के यहाँ प्रूफ के काम के लिए चक्कर काटने लगा। उसकी सूरत में, उसकी बातों में और उसके लहजे में कुछ ऐसी बात होती कि कोई ना न कर पाता। यों ढेर-ढेर-से प्रूफ साइकिल पर लादकर वह रात को दस बजे घर पहुँचता और रात-रात भर प्रूफ पढ़ता। उसने निश्चय किया था कि प्रूफ का काफी काम मिल जायेगा, तो ट्यूशन करना छोड़ देगा, लेकिन वह ऐसा न कर सका। लगे ट्यूशन छोड़ना उसे ठीक न लगा। फिर इस बीच गाँव में उसकी माँ ने एक और काम शुरू कर दिया था।

महीने में दो-दो सौ, तीन-तीन सौ रुपये बेटे से पाकर माँ को ख्याल आया कि क्यों न एक अच्छा-सा मकान बनवा लिया जाये, दरअसल अब उसे अपने बेटे के ब्याह की चिंता हो गयी थी। वह किसी अच्छे घराने में लडके का ब्याह करना चाहती थी और इसके लिए अपने पास एक अच्छा घर होना वह बहुत ही जरूरी समझती थी। वह जानती थी कि जैसा घर-बार होगा, वैसा ही रिश्ता मिलेगा। अपने बेटे की कमाई पर अब उसे पक्का विश्वास हो गया था। पढ़ते समय ही जब वह इतना कमा रहा था, तो पढाई पूरी करने के बाद तो जाने कितना कमायेगा। उसने बेटे से राय ली और तुरत मकान में हाथ लगा दिया।

वह भूत की तरह काम कर रहा था, दिन-रात। रोज तीस-तीस, चालीस-चालीस मील वह साइकिल चलाता, ट्यूशन करता, एम० ए० की पढाई करता प्रूफ इकट्ठे करता, उन्हें पढ़ता और फिर दौड़-दौड़कर लौटाता। किसी को कभी कोई शिकायत का मौका न मिला। उसका प्रूफ पढ़ना शहर में मशहूर हो गया और प्रेस वालों और प्रकाशकों के यहाँ से अब आप ही उसके यहाँ प्रूफ आने लगे। उसका काम बढ़ता गया।

इस बीच उसने एक और भी शौक पैदा कर लिया। शायद प्रूफ पढ़ते-पढते, या हिंदी से एम० ए० करने के कारण; उसे कविताएँ और कहानी लिखने का शौक हो गया। यों वह शहर के बुद्धिजीवियों के संपर्क में आया।

काम करने की उसकी शक्ति की जैसे कोई सीमा ही नहीं थी। लोग देखते-सुनते, तो आश्चर्य करते। कुछ लोग उसे राय भी देते कि आदमी को इतनी मेहनत नहीं करनी चाहिए। अभी जवानी है, शक्ति है, उत्साह है, इसलिए कुछ नहीं मालूम होता, लेकिन ऐसे बहुत दिन तक नहीं चल सकता। एक यन्त्र को भी आराम की जरूरत होती है, यह तो शरीर है। लेकिन इन बातों का उस पर कोई असर नहीं होता। वह अपनी सुर्ख आँखें मूँदकर सूखे चेहरे से मुस्करा भर देता। वह एक बड़ा आदमी बनने का सपना देखने लगा था। उसमें असीम आत्मविश्वास पैदा हो गया था।

लेकिन उसे एक धक्का लगा। एम० ए० में वह प्रथम श्रेणी प्राप्त न

कर सका। सभी परीक्षाओ में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाले के लिए यह बड़े अफसोस की बात थी। उसने सोचा था कि एम० ए० में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने के बाद उसे जल्दी ही कोई अच्छी नौकरी मिल जायेगी। तब वह यह सब जानमारू काम छोड़ देगा। तब इनकी उसे जरूरत ही नहीं रहेगी। दरअसल काम के मारे उसके पास बहुत अधिक सोचने-समझने का समय ही न था। पी-एच० डी० करने की सोचकर उसने अपने को आश्वस्त कर लिया और बदस्तूर अपने कामों में लगा रहा। फिर उसने एक और योजना बना डाली। प्रकाशको से आश्वासन पाकर, प्रेस वालो के सहयोग से उसने चटपट अपनी दो पुस्तकें भी प्रकाशित कर डाली। उसकी योजना हर वर्ष दो-तीन पुस्तके लिखने और उन्हे प्रकाशित करने की थी। हिसाब लगाकर उसने देख लिया था कि इस तरह पाँच-सात वर्षों मे वह एक अच्छा-खासा प्रकाशक बन जायेगा और उसके लिए एक मुस्तकिल आमदनी का दरवाजा खुल जायेगा। प्रेस वालो ने उसकी पुस्तके उधार मे छाप दी, किंतु कागज, ब्लॉक और पुस्तको की बँधाई मे उसका काफी रुपया खर्च हो गया और कुछ देना भी रह गया। दो-तीन महीने लगातार वह माँ को रुपये न भेज पाया, तो माँ का दिमाग खराब हो गया। मकान का काम बंद हो गया था, इस कारण गाँव मे उसकी किरकिरी होने लगी थी। लोग उससे पूछते थे—क्या बात है? मकान का काम क्यो बंद हो गया? लड़का क्या रुपया नही भेज रहा है?

पहले, महीने मे कम-से-कम एक दिन के लिए वह जरूर माँ से मिलने जाता था, लेकिन इधर व्यस्तता के बहुत अधिक बढ जाने के कारण वह दो-तीन महीने मे एक बार भी गाँव न जा सका था और न माँ को कोई चिट्ठी ही लिखी थी। माँ ने पहले सोचा कि किसी को बेटे के पास भेजकर उसका समाचार मालूम करे, लेकिन फिर यह सोचकर कि जाने वह किस हाल मे हो, एक दिन उसने खुद ही शहर जाने की बात तय कर डाली। उसने अपने साथ चलने के लिए एक आदमी ठीक किया, घर मे ताला लगाया, पडोसियो को सहेजा और चल पड़ी।

वे सुबह दस बजे शहर के स्टेशन पहुँच गये। खोजते-खोजते वे उसके कमरे पर पहुँचे, तो बारह बज गये थे। दरवाजे पर ताला पडा था। पडोसियों ने बताया कि वह सुबह छह बजे निकल जाता है और रात के दस बजे के पहले नहीं लौटता। हाँ, रात-रात भर उसके कमरे में रोशनी जलती दिखायी देती रहती है। शायद रात में भी वह कोई लिखने-पढने का काम करता रहता है।

बेटे की ऐसी दिनचर्या के अदाज से ही माँ बौखला उठी। रात के दस बजे तक उसके आने का इतजार करना पडेगा, यह कोई मामूली परेशानी की बात न थी। उसने अपने साथ आये हुए आदमी से कहा—उसका कमरा मिल गया है। चाहे वह जब आये, मुझे तो उससे मिलना ही है। लेकिन तुम काम-धंधे वाले आदमी ठहरे, खेवा-खर्च लो और जाओ। मैं दो-एक दिन मे आऊँगी। हमारे घर-द्वार का खयाल रखना।

असल मे वह यह नही चाहती थी कि उसके और उसके बेटे के बीच कोई तीसरा आदमी रहे और उनका कच्चा हाल मालूम कर ले। उसकी समझ मे ही नही आ रहा था कि आखिर दिन-दिन भर, रात-रात भर उसका बेटा क्या करता है। वह पडोस के एक ओसारे में दिन-भर पडी रही। घर से जो लाई-चना लायी थी, उसे ही खाकर पानी पी लिया। उसकी नजर अपने बेटे के कमरे के दरवाजे पर ही टिकी रही। शाम हुई, फिर रात। रात को यह सोचकर उसने कुछ भी न खाया कि बेटे के आ जाने पर ही खायेगी।

पडोसी ने दरवाजा बद करने के पहले उसे ताकीद की कि यहाँ से जाते समय वह रोशनी गुल कर दे। वह बैठी-बैठी जम्हाई लेती रही। इस डर से नही लेटी कि नींद न आ जाये।

चारों ओर सोता पड गया। सामने की गली भाँय-भाँय करने लगी। कुत्ते भौंकने लगे। ऐसी उबाने और थकाने वाली प्रतीक्षा उसने जीवन मे कभी भी न की थी। कडी मेहनत करने वाली के लिए यों निठल्ले बैठकर ऐसा इतजार करना मरन की तरह था। ऊब, थकान और भूख के मारे उसे गुस्सा आने लगा। ताकते-ताकते उसकी आँखें दुखने लगी और मन बेचैन हो उठा। उसे अब यह भी शका होने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि

लडका वहीं आये ही नहीं। जाने इतनी रात तक वह कहाँ रहता है और क्या करता है।

वह उठकर खडी हो गयी। जिस्म के पोर-पोर में दर्द हो रहा था। टाँगें दुख रही थीं। कमर अकड गयी थी। किसी तरह धीरे-धीरे पाँव रखकर वह ओसारे से उतरी और गली में खड़ी होकर आसमान की ओर ताकने लगी। तारों से वह समय का कुछ अंदाज लगाना चाहती थी, लेकिन अपने ऊपर जो थोड़े से तारे उसे दिखायी दे रहे थे, उनसे उसे कोई भी अंदाज न हुआ। उसे आश्चर्य हुआ कि यहाँ का आसमान कितना छोटा है और यहाँ तारे कितने कम और अपरिचित हैं! तिनडरिया तो कहीं दिखायी ही नहीं पडती।

वह ओसारे पर चढ आयी और आखिर परेशान होकर तय कर लिया कि बीस-बीस करके बीस बार राम-नाम लेगी। फिर भी लडका न आया, तो चना-लाई फाँककर वह लडके के कमरे के दरवाजे के सामने जा लेटेगी। लेकिन उसे ऐसा न करना पडा। अभी दसवीं बार ही वह जाप कर रही थी कि गली खडक उठी और उसने साइकिल से अपने लडके को उतरते हुए देखा। लेकिन इस समय वह इतने गुस्से में थी कि उसे पुकार भी न पायी। उसे देखते ही वह हफर-हफर हाँफने लगी। उसे लगा कि इस समय वह सामने पड जायेगा तो बिना मारे न छोडेगी।

लडके ने साइकिल दीवार से टिकाकर ताला खोला। दरवाजा खोलकर, साइकिल लेकर अंदर गया। अंदर फीकी-सी रोशनी हुई। वह यह सोचकर उठने को हुई कि लडका अब अपना दरवाजा बंद कर देगा। लेकिन दरवाजा बंद न हुआ, तो वह फिर वहीं बैठ गयी। वह देखना चाहती थी कि लडका अब क्या करता है। वह गुस्से में ही सोचने लगी, बाप रे बाप! दिन-दिन भर काम! रात-रात भर काम! वह कब आराम करता है? कब सोता है? मैं भी खेत में, घर में हाड तोड मेहनत करती हूँ, लेकिन एक रात न सोऊँ, तो क्या दूसरे दिन कोई काम कर सकती हूँ? और यह लडका है कि दिन-रात काम करता है। न आराम करता है, न सोता है। यह कैसे जियेगा? कब तक जियेगा?

दरवाजा खुला रहा। रोशनी झाँकती रही। कोई आवाज नहीं। वह

१० . श्री

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

गुस्से में हफर-हफर हाँफती रही, खुले दरवाजे की ओर देखती रही और सोचती रही। उसकी भूख-प्यास हिरा गयी थी। नींद चली गयी थी। वह रात-भर यों ही बैठकर देख लेना चाहती थी कि पड़ोसी की बात में कितनी सचाई है। भला कोई बिना आराम किये, बिना सोये चौबीस घंटे कैसे काम कर सकता है? अगर यह बात सच निकली, तो वह इसे एक मिनट के लिए भी यहाँ नहीं छोड़ेगी। उसे लड़के से हाथ नहीं धोना है। हो चुकी कमाई। बन चुका मकान, नहीं होगी किसी बड़े घर में शादी, तो न हो. वह किसी छोटे घर की बहू से ही सब्र कर लेगी। झोंपड़ी में ही रह लेगी। लेकिन यों बेटे को खून सुखाने वाला काम नहीं करने देगी। बाप रे बाप! इसे कुछ हो गया, तो उसका क्या होगा! लोग कहेंगे, माँ ने बेटे से रात-दिन काम कराके उसकी जान ही ले ली! जर-जायदाद का ऐसा भी लोभ क्या! लोग ताज्जुब करते थे, वह खुद भी ताज्जुब करती थी कि लड़का पढ़ता है, शहर में रहता है, कैसे वह अपना खर्च चलाता है और कैसे इतना-इतना रुपया हर महीने भेजता है। किसी को क्या मालूम कि लड़का दिन-रात कलेजा फाड़कर काम करता है।

उसका गुस्सा जाता रहा। उसका दिल पसीज उठा। वह चुपके-चुपके रोने लगी। उसे लगा कि वही अपराधिनी है। उसने कभी लड़के से क्यों न पूछा कि आखिर वह इतनी बड़ी कमाई कैसे करता है? वह तो बहुत खुश थी कि लड़का पढ़ भी रहा है और इतना कमा भी रहा है···पढ़ाई पूरी करने के बाद वह कितना कमायेगा···कितना कमायेगा! आग लगे इस कमाई पर! इस तरह कोई जान पर खेलकर कमाई करता है!

उसे हैरानी हुई कि यों बैठकर वह क्या देखना चाहती थी? अब क्या देखना शेष रह गया था! उसने आँखें पोंछी। लेकिन मन स्थिर हो ही न रहा था, जैसे पेट में हूल समा गयी हो और मुँह से चीख निकल जाना चाहती हो। वह घर पर बैठकर इज्जत बटोर रही थी और यहाँ उसकी जिंदगी की दौलत लुटी जा रही थी···वह पोटली समेटकर, उठ खड़ी हुई, तो जैसे उसके पाँवों में जान ही न हो। टाँगें थर-थर काँपने लगीं। फिर भी उसने अपने को सँभाला। वह जानती थी कि फिर बैठी, तो बैठी ही रह जायेगी। उसने झुककर पानी-भरा लोटा उठाया और सीढ़ियाँ उतरी।

दरवाजे पर जा विह्वल-सी होकर पुकार उठी—भैया !

लड़के ने चौंककर दरवाजे की ओर देखा और लपककर दरवाजे पर जा माँ के पाँव छुए। फिर उसका मुँह निहारता हुआ बोला—इस समय तू कैसे आयी, माँ ? तू बीमार है क्या !—उसकी बाँह पकड़कर वह उसे अंदर ले आया। जमीन पर बिछी चटाई पर बैठाया और हड़बड़ी में बोला—तू बैठ, मैं तेरे लिए कुछ खाने को लाऊँ।

उसका हाथ पकड़कर, उसका मुँह निहारती हुई माँ बोली—नहीं, इतनी रात को अब क्या मिलेगा और मैं क्या खाऊँगी ! तू बैठ !

हाथ छुड़ाकर वह बोला—नहीं-नहीं, माई ! यहाँ हर समय हर चीज मिलती है। मैं अभी दो छन में लेकर आता हूँ।—उसने चटपट कपड़े बदले, साइकिल उठायी और दरवाजे के बाहर हो गया।

चटाई पर एक छोटी-सी चौकी थी, जिस पर ढेर सारे कागज, एक कलम और लालटेन रखी हुई थी। कलम खुली हुई थी। शायद वह कुछ लिख रहा था। कमरा बहुत ही छोटा था। उसमें कोई खिड़की नहीं थी। इसीलिए उसने दरवाजा खुला रख छोड़ा था। लालटेन रोशनी कम और धुआँ ज्यादा उगल रही थी। कमरे में चारों ओर दीवारों से लगकर किताबें सजी थीं। एक ओर एक कोने में एक छोटा-सा बक्सा था, उस पर एक दरी में बिस्तर लपेटकर रखा था। बक्से के ऊपर कीलों से एक-दो कपड़े लटक रहे थे और बगल में गिलास से ढँकी हुई एक सुराही थी।

इतनी सारी किताबें ! उसकी समझ में न आया कि इतनी सारी किताबों का लड़का क्या करता होगा। उसने चौकी पर से एक-दो कागज उठाकर यों ही देखा। वह पढ़ी-लिखी न थी। उसने सोचा, मुझे कुछ पढ़ना-लिखना आता, तो शायद समझ पाती कि लड़का क्या करता है।

गली खड़की, तो उसने दरवाजे की ओर देखा। लड़का साइकिल लिये-दिये अंदर आ गया। वह काँप रहा था। उसने माँ के आगे केले रख दिये और पैंट की जेबों से संतरे और सेब निकाल-निकालकर रखने लगा। वह हाँफता चला जा रहा था और हल्के-हल्के खाँस भी रहा था। उसने

नपथ का काम हूँ (कविता संग्रह : 1981)
अरघान (कविता संग्रह : 1984)
सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

सुराही से ढालकर पानी दिया और माँ से कहा—खा ले, माई ! मैंने सोचा इस समय फल ही अच्छे रहेंगे। तेरी तबीयत खराब थी क्या ? तू घर से कब चली थी ?—और वह संतरा उठाकर छीलने लगा।

उसका हाथ रोककर माँ ने कहा—रहने दे, इस समय कुछ भी खाने को मन नहीं करता। सुबह खायेंगे।

—नहीं,—लड़के ने कहा—कुछ खा के सो। मैं बिस्तर लगा देता हूँ। —और उसने छिला हुआ संतरा माँ के मुँह की ओर बढ़ा दिया।

उससे खाया न जा रहा था, फिर भी वह खा रही थी। लडके ने उसे कई केले भी छीलकर दिये। फिर सेब भी काटकर दिया। माँ ने कहा—तू भी कुछ खा।

—मैं तो भर पेट खाकर आया था।'' कब आयी, बताया नहीं ?

—भैया, उस ओसारे की बत्ती गुल कर आ। उन्होंने बुझा देने को कहा था। मैं भूल गयी।

लडका दौडकर गया और बत्ती बुझा आया। गली मे अधकार छा गया। कमरे की मद्धिम रोशनी और भी सिकुड गयी। लडका कुछ हडबडी मे मालूम होता था। वह बोला—अब तू जरा चटाई से उठ जा, तो मैं बिस्तर बिछा दूं। दिन भर की तू थकी है, सो रह. सुबह बातें करेंगे।

वह चटाई पर से हट गयी। लडके ने चौकी हटायी और उस पर बिस्तर फैला दिया। माँ ने पौढ़ते हुए कहा—तू भी अब सो रह। जाने इतनी रात तक तू कहाँ क्या करता रहता है ! पडोसी कहता था, तू दिन-दिन भर, रात-रात भर काम करता है'''।

—तू सो जा माई ! सुबह बातें करेंगे। इस समय एक जरूरी काम करना है। थोडी देर में मै भी सो जाऊँगा।—और वह प्रूफ पढने लगा।

माँ को नीद क्या आनी थी, वह चुपचाप पड़ी रही। देखने में लडके का स्वास्थ्य कुछ बुरा न लग रहा था। उसने तो सोचा था कि जब वह इतना काम करता है और आराम बिल्कुल नही करता, तो जरूर सूखकर काँटा हो गया होगा। लेकिन ऐसा नहीं था। उसकी देह भरी-भरी लग रही थी। चेहरे पर भी काफी माँस आ गया था। वह खुश भी नजर आ रहा था। उसे देखकर कोई भी न कह सकता था कि वह इतना काम करता है

और आराम बिलकुल नही करता। चेहरे पर कोई थकावट का चिह्न भी नही था।

—इतनी सारी किताबें कैसी है, भैया ?—आखिर माँ बोल पडी।

—तू अभी तक नही सोयी ?—वह बोला—तू बस सो जा, नही तो कल तेरी तबीयत और भी खराब हो जायेगी। सुबह बातें करेंगे।

लडका इस समय कोई बात नही करेगा, यह सोचकर वह चुप हो गयी। उसने सोने की कोशिश की और जल्दी ही उसे नीद आ गयी।

सुबह नीद खुली, तो लडका कमरे मे नही था। वह उठकर बैठी ही थी कि पडोसी की एक छोटी लडकी ने दरवाजे पर आकर कहा—ताईजी, हमारे यहाँ चलकर मुंह-हाथ धो लीजिये। भाई साहब थोड़ी देर में आयेंगे। मैं कमरे मे ताला बद कर देती हूं।

लडके का यह व्यवहार उसे बडा अजीब लगा। लडकी ने अदर आकर ताला उठा लिया। उसमे चाबी लगी हुई थी। उसने कहा—नहाना हो, तो कपडे भी ले लीजिये, ताईजी !

वह नहा-धोकर तैयार हुई थी कि उसी लडकी ने उसके पास आकर कहा—चलिये, भाई साहब आ गये।

लडका चौकी पर कई दोने सजाकर इतजार कर रहा था। लडकी के साथ वह कमरे मे आयी, तो लडके ने जल्दी में लडकी को थोड़ी मिठाई देकर चलता कर दिया और दरवाजा उठंगा दिया। माँ से कहा—अच्छी तरह खा-पी ले, माई ! रात कुछ नही खाया था।

माँ चटाई पर बैठती हुई बोली—मैं तेरे पास खाने-पीने आयी हूँ, रे ?

लडका जरा हँसकर बोला—मै जानता हूँ कि तू क्यो आयी है। मैं बिलकुल ठीक-ठाक हूं। इधर कुछ महीने से पैसे नही भेज पाया, क्योकि यह किताबो का एक नया धधा शुरू कर दिया है। इसमे बहुत रुपया लग गया है। कुछ देना भी पड गया है। लेकिन इस धधे से मुझे बडी-बडी उम्मीदे हैं। दो-चार महीने बाद रुपये लौटने शुरू होंगे। लेकिन आज शाम तक मैं कुछ रुपयो का इतजाम कर दूंगा। कल सुबह ही की गाडी से तुम चली जाना। मकान का काम फिर शुरू कर दो। अब मैं बराबर पैसे भेजूंगा।···तू जल्दी खा ले, मुझे काम से जाना है।

एक ही सांस मे, जल्दी-जल्दी सभी बातें लड़का कह गया। अब तो कोई बात पूछने की रह ही नही गयी। फिर भी मिठाई का एक टुकड़ा उठाती हुई वह बोली—अब तेरी पढाई पूरी हो गयी, कोई नौकरी क्यो नही कर लेता? तूने तो ऊँची पढाई की है। कोई बडी नौकरी जरूर मिल जायेगी। कलक्टर-दरोगा भी तो हो सकता है?

सुनकर लडका मुस्कराया। बोला—हो सकता हूँ। कोशिश करूँगा। तू जरा जल्दी-जल्दी खा ले।

—इतनी जल्दी है, तो तू जा। मैं खा लूँगी।

लडका हँस पडा। बोला—माँ, मेरी आदत ही कुछ ऐसी हो गयी है कि एक मिनट भी बिना काम के नही बैठा जाता। तुझसे ही मैंने यह आदत सीखी है। रात को मैं जल्दी आ जाऊँगा। सुबह पाँच बजे तुम्हारी गाडी जाती है।

—रात को तू कहेगा, जल्दी खा-पीकर सो रह, सुबह गाड़ी पकडनी है। फिर मैं बातें कब करूँगी?

—बातें क्या करनी है, माँ? सब तो मैं तुम्हे बता चुका हूँ। और कोई बात बाकी हो, तो कर ले।

—कई जगहो से तेरी शादी की बातें चल रही है···

—तू कही भी पक्की कर ले।

—ऐसे ही पक्की हो जायेगी? कोई तुझे देखने यहाँ आये और तुझे इस हालत मे देखे···

—तो मैं क्या करूँ?

—एक अच्छा-सा घर ले ले। कुछ सर-सामान कर ले। अच्छे कपड़े पहन। जरा ठाठ-बाट···देखने वाले यही सब देखते है···

—ठीक है, सब कर लूँगा। और कुछ?

—कब तक कर लेगा?

—जल्दी ही···दो-तीन महीने मे।

—हाँ, सब करके मुझे लिखना, ताकि बात आगे चलाऊँ। और रुपये भेजना बंद न करना। मकान का काम हरगिज नही रुकना चाहिए, वर सारी बनी-बनायी इज्जत···

—ठीक है। तो अब मैं जाऊँ ?

—जा, भाई, जा ! तेरी जान तो जैसे सांसत में पड़ी है···

लड़का हँसा। हँसते हुए ही कमरे से बाहर हो गया।

वह हैरान-सी दरवाजे की ओर देखती रही। लड़का इतना कामू निकल गया था कि माँ की भी उसे परवाह नहीं ! वह नाराज हो कि खुश, उसकी समझ में न आ रहा था। उसे अपने दिन याद आये, जब लड़का छोटा था और उसका बाप मर गया था। वह कितनी मेहनत करने लगी थी ! अपनी खेती-गृहस्थी के कामों के अलावा वह औरों की कूटनी-पिसनी और मर-मजूरी करती थी। न दिन को दिन समझती थी, न रात को रात। लोग देखते और अचरज और दया करते। कोई-कोई तो छोह से भरकर यह भी कहते कि इस तरह देह की चिंता छोड़कर तू काम करेगी, तो कितने दिन चलेगी ? आज लड़के का भी वही हाल है। कहता था न, तुझसे ही मैंने यह आदत सीखी है। आदत तो कोई बुरी नहीं···

इसी समय वह लड़की फिर आ गयी। उसके सामने मिठाई-पूरी ज्यों-की-त्यों पड़ी देखकर उसने आश्चर्य से पूछा—अभी आपने खाया नहीं, ताईजी ? भाई साहब चले गये क्या ?

—हाँ, उसको काम से एक पल की भी छुट्टी नहीं है !

—वो बहुत काम करते है और बहुत रुपया कमाते हैं, ताईजी ! अम्मा कहती हैं, एक दिन वो बहुत बड़े आदमी हो जायेंगे।

माँ मन-ही-मन खुश हुई। बोली—हमने बहुत तकलीफ उठायी है, बिटिया ! कड़ी मेहनत न करते, तो भूखों मर जाते।

—आप खा-पीकर थोड़ा आराम कर लें। अम्मा ने कहा है कि दोपहर को हम बाजार चलेंगे। आपके लिए कुछ चीजें खरीदवानी हैं, भाई साहब कह गये हैं। आप कल सुबह की गाड़ी से··

लड़का उसकी खरीदारी का भी इंतजाम कर गया है, उसे सब बातों का खयाल है, माँ के लिए यह बड़े संतोष की बात थी। फिर भी वह बोली —मुझे तो किसी चीज की जरूरत नहीं है, बिटिया ! गाँव में रहती हूँ। मोटा-झोटा पहनती हूँ, मोटा-झोटा खाती हूँ।

—फिर भी चलिये, शहर-बाजार घूमकर देख लीजिये। दिन-दिन भर

नयद का काबहू (कविता संग्रह : 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
सी-50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कमरे में बैठकर क्या करेंगी ? आप तैयार रहियेगा। अम्मा जैसे ही खाली होंगी, मैं आपको लेने आऊंगी।

लडकी चली गयी। माँ मिचरा-मिचराकर खाने लगी। चीजें सभी अच्छी थी, लेकिन जैसे वह कोई कमी महसूस कर रही थी। उसे लग रहा था कि लडका अगर पास मे बैठा होता, तो वह अच्छी तरह खा लेती। लेकिन वह तो उसकी ही तरह सिर्फ काम को ही जानता है। उसे याद आया, उसने भी तो ऐसा ही किया था। उनके मरने के बाद कब उसने फुरसत से बैठकर खाना खाया, या लडके को अपने सामने बैठाकर खाना खिलाया ? यह कैसी अजीब बात है कि इतने वरसो के बाद उसे आज यह पहली बार एहसास हुआ है कि इस तरह खाना और खिलाना···

एक बडे अफसर को, जिसके यहाँ वह रात को एक घटा ट्यूशन करता था, साहित्य मे गहरी दिलचस्पी थी। वह उसकी रचनाएँ पढकर बहुत प्रभावित हुआ था और उसके हाल पर उसे बड़ा तरस आया था। ऐसा प्रतिभाशाली, कर्मठ और उच्च शिक्षा प्राप्त युवक घर-घर ट्यूशन करता है और प्रेस-प्रेस प्रूफ बटोरता फिरता है, उसे यह बहुत बुरा लगता था। वह उसके लिए कोई ऐसी व्यवस्था करने की चिंता मे था, जिससे उसे भाग-दौड़ और बेकार के कामो से छुट्टी मिले। एक सयोग मिला, तो एक दिन उसने उससे बात की। उस शाम को उसने अपने बच्चो को सिनेमा भेज दिया। अपने वक्त पर वह आया, तो उसे वह ओसारे मे ही मिला। बोला—आज बच्चे पिक्चर चले गये हैं। आप आइये, मेरे साथ चाय पीजिये।

—क्षमा कीजिये, मै चाय नही पीता। आप पीजिये और मुझे आज्ञा दीजिये। मेरे पास बहुत काम है।

अफसर को बहुत बुरा लगा। फिर भी उसने कहा—आपसे कुछ जरूरी बातें करनी है।···मेरे कार्यालय मे एक जगह है, आप काम करना चाहेंगे ?

—कितनी तनख्वाह मिलेगी ?—उसने पूछा।

—तीन-चार सौ।

—कर लूँगा—वह उठते हुए बोला—जब कहे, आ जाऊँगा।

—कल ही आ जाइये ''सुबह दस बजे।

—बहुत अच्छा। नमस्कार!—और वह भागता हुआ-सा ओसारे से उतरा। पोर्टिको से अपनी साइकिल ली और तेज-तेज पैडल मारता हाते से बाहर हो गया।

अफसर खडा-खडा देखता रह गया। उसकी साइकिल के कैरियर पर प्रूफो का पुलिदा था। दूसरे ट्यूशन का समय होने तक शायद वह कही बैठकर प्रूफ पढेगा। अफसर को बडा अजीब लगा। कम्बख्त का समय इतना मूल्यवान है कि मुझ जैसे अफसर के साथ भी थोड़ी देर बैठकर बात करना गवारा नही! अजीब तेवर है इस आदमी का, एकदम बाँस की तरह सीधा और काठ जैसा सूखा! उसे लगा कि वह उसे अपमानित कर गया है। फिर तुरत ही वह मुस्करा उठा। नही, उसने मुझे अपमानित नही किया। ऐसे आदमी पर गुस्सा नही करना चाहिए···समय का मूल्य वह समझता है, यह तो खुशी की बात होनी चाहिए।

और दूसरे ही दिन से वह कार्यालय मे काम करने लगा। वह विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे जो दोपहर को तीन घटे शोध सबधी कार्य करता था, उसे बद कर दिया और दूसरे सब काम बदस्तूर चलते रहे। कई महीने बीत गये और अफसर को मालूम हुआ कि नौकरी मिल जाने के बावजूद उसके जीवन मे, व्यस्तता और काम-धाम मे कोई परिवर्तन न आया, तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने फिर उससे एक दिन बात करने की सोची, लेकिन हिम्मत न हुई।

इस बीच उसने माँ का मन रखने को एक अच्छा-खासा दो सौ रुपये महीने का मकान ले लिया था। उसे फर्नीचर वगैरा से सजा दिया था और उनको झाड-पोछ के लिए एक लड़का भी रख लिया था। उसके प्रकाशनो की पहली बिक्री का हिसाब बहुत अच्छा मिला था। उत्साह मे आँख मूँदकर सब-कुछ कर गया था और आगे के प्रकाशनो की योजना भी बना ली थी।

एक दिन मेहमान आये और सब कुछ देख-सुन गये। माँ ने शादी तय होने की सूचना दी। आनन-फानन मे तिलक चढ़ा और फिर शादी हुई और वह माँ और दुल्हन को लेकर शहर के मकान मे आ गया। यह सब कुछ हो गया, लेकिन उसके जीवन में कोई अंतर नही आया। पहले ही की तरह वह छह बजे नाश्ता करके चला जाता। साढे नौ बजे घर लौटता और भोजन करके कार्यालय चला जाता। फिर रात को कभी दस बजे और कभी बारह बजे वापस लौटता। माँ और दुल्हन उसका इंतजार करती रहती। वह जल्दी-जल्दी कपड़े बदलता और प्रूफ का पुलिंदा खोलकर, मेज पर बैठकर वही थाली लाने को कहता। बायें हाथ से खाना खाता रहता, दाहिने हाथ से प्रूफ ठीक करता रहता।

सब सो जाते। वह कब सोता, किसी को मालूम न होता। लेकिन सुबह ठीक छह बजे वह नहा-धोकर नाश्ते के लिए तैयार दिखायी पडता। माँ और दुल्हन उसका यह तौर-तरीका देखकर दिन-रात कुढ़ती रहती। वे क्या करे, उनकी समझ मे न आता था। माँ यह सोचकर दुल्हन के साथ आयी थी कि पाँच-सात दिन मे उसकी घर-गृहस्थी ठीक-ठाक करके गाँव लौट जायेगी। लेकिन उसने जब यहाँ यह नक्शा देखा, तो उसकी समझ मे न आया कि क्या करे। आखिर उसने कई दिन देख लिया, तो एक रात वह उसके पास आयी, वह प्रूफ पढने मे डूबा हुआ था। माँ की आवाज उसके कानो मे पड़ी, तो चौककर उसने उसकी ओर एक बार देखा और फिर प्रूफ पढ़ने लगा।

माँ का पारा चढ़ गया। उसने उसकी कलम पकड ली और कहा—मैं तुमसे एक बात करने आयी हूँ। सुन लो, फिर काम करो।

परेशान होकर उसने कहा—इस समय बहुत काम है, माई! कल बातें करेंगे।

—कल सुबह ही मैं चली जाऊँगी—माँ ने कड़े स्वर मे कहा—मेरी बात तुम इसी समय सुन लो!

—तो कह डालो जल्दी से।

—तुम्हारा इस तरह रात-दिन काम करना कब तक चलेगा? एक पराये घर की लड़की को जो अपने घर लाकर बैठाया है,

कुछ खयाल है तुम्हें ?

—क्यो, उसे क्या तकलीफ है ?

—तुम्हारी माँ होकर क्या मुझे ही तुम्हे यह भी बताना होगा कि एक नयी दुल्हन का दूल्हा उससे कोई बात न करे, प्यार न करे, साथ सोये-बैठे नही, तो उसे क्या तकलीफ होगी ?

वह उसका मुँह ऐसे ताकने लगा कि जैसे उसकी कोई बात उसकी समझ में ही न आ रही हो।

—इस तरह मेरा मुँह क्या ताक रहा है ? वह पराये घर की लड़की है। वेजुबान गाय है। कुछ कहती नही, तो इसका क्या यह मतलब है कि वह कुछ चाहती भी न होगी ? तुम्हारे इस तरह रात-दिन भाग-दौड़ और काम करने को आग लगे कि तुम्हें और किसी भी बात का खयाल ही नही रह गया है ! मैं तुमसे पूछती हूँ, यही करना था, तो तुमने शादी क्यों की ?

—इसलिए की, क्योंकि तुम चाहती थी, वरना···

—चुप !—माँ ने डाँटकर कहा—तेरी यह उम्र हो गयी और तू इस तरह की बात करता है ? तुझे शर्म नही आती ? चल उठ ! जाकर उस कमरे मे सो।

माँ ने उसका हाथ पकड़कर खीचा, तो वह गिड़गिड़ाकर बोला—माई, ये सब प्रूफ मुझे कल सुबह ही देने हैं। यह करीब पंद्रह रुपये का काम है···

—तू चलता है कि नही ?—माँ बिगडकर बोली—बहुत कमाई कर चुका ! अब थोड़ा कम भी कमायेगा, तो बिजली नही गिर पड़ेगी ! चल तू !

माँ ने उसे घसीटा, तो वह करीब-करीब रोकर बोला—माई, तू नही जानती कि यहाँ का मेरा खर्च कितना बढ गया है ! फिर तीन-तीन किताबें छपने को भी दे रखी हैं। पास में बहुत कम पैसा है। अगर काम न किया, तो···

माँ अब अपने को अधिक सँभाल न पायी। जीवन मे शायद पहली बार उसने बेटे पर हाथ छोड़ दिया और उसका हाथ छोडकर वहाँ से अपने कमरे मे जाकर रोने लगी। लड़के पर हाथ छोड़ने का उसे पछतावा हो रहा था। उसे आशा थी कि लड़का आकर उसे चुप करायेगा और उसकी बात मान

जायेगा। लेकिन वह न आया, तो उसका पछतावा और भी बढ़ गया। लड़का कहीं नाराज न हो गया हो, यह शंका भी उसे काटने लगी। आज तक उसने उसकी एक भी बात न टाली थी। लेकिन आज'''काम उसे इतना प्यारा हो गया है कि औरत और माँ की भी उसे कोई चिंता नहीं। जवानों के लिए जो सबसे जरूरी चीज होती है, उससे भी वह बेखबर हो गया है। हे भगवान ! लड़के को यह क्या हो गया ?

माँ धीरे-धीरे रो रही थी और सोच रही थी। सोचते-सोचते ही उसे अपने पुराने दिन याद आ गये। जब वे मरे थे, उसकी आयु बाईस-तेईस से ज्यादा न होगी। वह उम्र कोई पूजा-पाठ करने की तो नहीं होती, लेकिन उसने क्या किया ! उसे सब याद था। काम, काम और काम, और थकान से चूर होकर घड़ी-दो घड़ी के लिए रात में पड़ रहना। और किसी बात का उसे ख्याल कब आया ? ऐसे भी कई अवसर आये, जब उसे खेत-खलिहान में अकेली पाकर किसी ने छेड़ा, लेकिन वह तो जैसे सब कुछ भूल गयी थी। काम की आग में सब भस्म हो गया था'''हे भगवान ! इसी उम्र में कहीं लड़के का भी तो वही हाल'''

पछतावे के मारे उसका कलेजा फटने लगा। उसने अपने आँसू पोंछे। सिसकी रोकी और उठकर लड़के के कमरे की ओर चली उसका मनुहार करने। दरवाजे से ही उसने देखा, लड़का मेज पर बैठा काम कर रहा था, जैसे कि कहीं कुछ हुआ ही न हो। यह देखकर वह सन्न रह गयी। बड़े वेग से रुलाई फिर उबल उठी। कलेजा जैसे टूक-टूक हुआ जा रहा था। वहाँ एक क्षण भी वह और रुक जाती, तो जाने क्या हो जाता। वह लौटकर अपने बिस्तर पर जा पड़ी और मुँह में लुग्गा ठूँसकर बिलखती रही, तड़पती रही। सारा अपराध उसका अपना ही लग रहा था'''खेत ''मकान''' हैसियतदार बनने का लोभ'''हे भगवान ! सब तो बना, सब तो हुआ, लेकिन लड़का क्या हो गया ?

रात-भर वह सो न सकी। सुबह लड़के का सामना वह कैसे करेगी, उसकी समझ न आ रहा था। जो कहना नहीं चाहिए था, वह भी चुकी थी। जो कभी न किया था, उस पर हाथ भी छोड़ चुकी। कोई नतीजा न हुआ। आगे क्या होगा।

हमेशा की तरह सुबह लड़का नाश्ता करके चला गया, तो वह दुल्हन से बोली—मैं अब गाँव जाऊँगी बडा हरज हो रहा है।

सिर झुकाकर दुल्हन ने कहा—मुझे भी ले चलिये, माईजी !

—नही, तू अभी यही रह। मुझे लगता है कि मेरे कारण लड़का शरमाता है और सकोच करता है। तुम दोनो अकेले रहोगे, तो बात दूसरी होगी। तुम घबराओ नही, बेटी ! लड़के पर भी मेरी ही तरह काम का भूत सवार है। तुम चाहो, तो उसके सिर से यह भूत उतार सकती हो। तुम शांति और धीरज से यह काम करो। सब ठीक हो जायेगा। मैं जल्दी ही फिर आऊँगी।—उसके सिर पर हाथ रखकर उसने कहा—तुम घबराओ नही, बेटी ! सब ठीक हो जायेगा। तुम भी मेरे साथ चली चलोगी, तो उसके खाने-पीने का इतजाम कौन करेगा ? वह हमारे लिए ही तो इतना काम करता है और कमाता है। उसे अकेला छोड़ देंगे, तो लोग क्या कहेगे ?

उसकी नोकरी अस्थायी थी। अफसर अपनी ओर से उसकी मियाद बढाता जाता था। एक दिन अचानक ही उसके तबादले का फरमान आ गया। अफसर को आशा थी कि उसकी विदाई-पार्टी मे वह जरूर सम्मिलित होगा। लेकिन वहाँ उसे न पाकर भी कोई आश्चर्य नही हुआ। शाम को जब वह ट्यूशन पर उसके यहाँ आया, तो उसने उसे अपने पास बुलाकर उसका हिसाब चुकता किया। उसे आशा थी कि इस अवसर पर तो वह जरूर ही कोई बात करेगा। लेकिन नही। उसने पैसे जेब मे रखे और नमस्कार करके चलता बना।

नये अफसर ने आते ही उसकी जगह की सूचना कमीशन को दी और कमीशन की ओर से उसका विज्ञापन निकल गया। लोगो ने उसे उस विषय मे बताया, लेकिन उसने कोई ध्यान न दिया। एक दिन नये अफसर ने उसे अपने पास बुलाकर कहा—मुझे कोई अनियमितता पसंद नही, इसलिए मैंने यह कार्रवाई की है। आपके हित मे भी यही है कि आप कमीशन के समक्ष उपस्थित होकर यह पद प्राप्त कर लें। आप अर्जी दे दें।

(कविता संग्रह : 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

—दे दूँगा—उसने कहा।

—जब तक कमीशन से चुनाव नही हो जाता, काम करते रहिये।

—करता रहूँगा—उसने कुर्सी से उठते हुए कहा—अब आज्ञा है? बहुत सारा काम पड़ा है।

नये अफसर ने उसे घूर के देखा और सोचा, यह तो बड़ा ही अजीब आदमी है। उसे आशा थी कि वह उससे कुछ सिफारिश वगैरह के लिए कहेगा, लेकिन वह तो जाने के लिए तैयार खड़ा था। मन-ही-मन चिढकर उसने कहा—जाइये!

उसने अर्जी दे दी और इटरव्यू में भी हो आया। लेकिन चुना नहीं गया। एक बिलकुल नये आदमी को ले लिया गया। लोगों ने सुना, तो कहा कि यह बडा अन्याय हुआ है। ऐसे परिश्रमी, योग्य, ईमानदार, कर्तव्य-परायण और अनुभवी आदमी को नही लिया गया, आश्चर्य है! लेकिन नये अफसर ने, जो कि स्वयं कमीशन मे एक विशेष सदस्य की हैसियत से उपस्थित था, बताया कि उसने इटरव्यू मे अच्छा नही किया था। सवालों के जवाब उसने इतने संक्षेप में दिये थे कि उसे अच्छे अंक मिल ही नही सकते थे।

लेकिन उसे कोई अफसोस न था। उसने अपना शोध-कार्य फिर शुरू कर दिया और अपने कार्यक्रम बरकरार रखे। माँ जो आशा करके गयी थी, वह फलीभूत न हुई थी।

लेकिन दो-तीन महीने मे ही उसके कार्यक्रमो मे तो कोई विशेष नहीं, उसके चेहरे और आँखों मे एक स्पष्ट परिवर्तन दिखायी देने लगा। चेहरे पर चिंता की छाया और आँखो मे कुछ-कुछ खोया-खोयापन-सा। लोग उससे पूछते कि क्या बात है, तो वह मुस्कराकर टाल जाता। घर में भी अब दुल्हन कभी-कभी रात या दिन में उसे बिस्तर पर पडे देखती, नीद में सोये नही, बल्कि या तो छत की ओर एकटक देखते हुए, या यों ही आँखें बंद किये हुए और उसाँसे भरते हुए। पहले वह जल्दी-जल्दी खाने की थाली बिलकुल साफ कर देता था, लेकिन अब मिचरा-मिचराकर खाता और थाली में बहुत-कुछ छोड भी देता। देखते-देखते वह बहुत हरक गया, तो दुल्हन ने माईजी को चिट्ठी लिखी।

दरअसल नौकरी छूटने, पुस्तकों की बिक्री कम होने और प्रेसों का उधार हो जाने के कारण उसकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। ट्यूशनों और प्रूफों की कमाई का एक बड़ा हिस्सा तो मकान के किराये में ही निकल जाता। जो बचता, उसमें से वादों के मुताबिक उधार चुकता करने के बाद, माँ को कुछ भी न भेजने के बावजूद, घर का खर्चा न चल पाता था। दुल्हन न होती, तो फौरन वह यह मकान छोड़कर अपने लिए पहले ही की तरह कोई कोठरी ले लेता और अपनी समस्या का हल निकाल लेता।

अपने जीवन में पहली बार उसने ऐसा महसूस किया कि एक विकट परिस्थिति ने उसे चारों ओर से घेर लिया है, जिससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं। अपने जिस परिश्रम पर उसे इतना भरोसा था, वह टूटता-सा लगा। परेशानी और चिंता के मारे उसका दिमाग भन्ना-भन्ना उठता था। मेज पर पहले ही की तरह रात-रात भर बैठे रहने के बावजूद वह प्रूफ के काम पूरे न कर पाता और जो करता, उसमें भी गलतियाँ छूट जातीं। कभी-कभी तो सामने के अक्षर भी धुँधले पड़कर अंधकार में विलीन हो जाते। मन पर हर घड़ी चिंता का एक ऐसा भार लदा रहता कि वह व्याकुल हो-हो उठता। कभी-कभी तो उसे ऐसा भी लगता कि दिमाग फट जायेगा या दिल बैठ जायेगा। ऐसी स्थिति में वह बिस्तर पर लेट जाता, लेकिन सुकून न मिलता। वह सोने की कोशिश करता नींद न आती।

उसके काम के बारे में शिकायतें होने लगीं, समय पर काम पूरा न करने की और गलतियाँ भी छोड़ने की। लोगों की शिकायतें उसे बर्छे की तरह बेध जातीं और वह झुँझलाकर कह देता—ऐसी बात है, तो आप किसी और से अपना काम करा लें। मेरा दिमाग ठीक नहीं रहता...

—तो किसी अच्छे डॉक्टर से इलाज कराइये, साहब! और शहर में अफवाह फैल गयी कि अत्यधिक काम करने के कारण उसका दिमाग खराब हो गया है। जो भी सुनता, उसे बड़ा आश्चर्य, अफसोस और सहानुभूति होती। बुद्धिजीवियों में तो एक सनसनी-सी फैल गयी। उन्होंने ऐलान कर दिया कि प्रेस-व्यवसायियों के घनघोर शोषण के कारण ही वह विक्षिप्त हो गया है। उसके इलाज की पूरी जिम्मेदारी उन्हीं पर होनी चाहिए।

एक सुबह माँ आयी, तो उसका मुँह देखते ही छाती पीट-पीटकर रोने लगी—हाय ! मेरे लाल को यह क्या हो गया ? कैसी अच्छी तंदुरुस्ती थी मेरे भैया की ! अचानक यह क्या हो गया कि मेरा कलेजा सूखकर काँटा हो गया ?

वह बैठा-बैठा शून्य दृष्टि से माँ को देख रहा था। माँ ने उसकी यह दृष्टि देखी, तो उसको सनाका हो गया। वह दौड़कर उसके सिर को अपनी गोद मे लेती चीख उठी—हाय मेरी आँख ! तू इस तरह क्यों देख रहा है ? तुझे यह क्या हो गया, मेरा कलेजा ?

वह एक शब्द भी न बोला, तो पास ही खड़ी दुल्हन से माँ ने पूछा—बता, दुल्हन इसे क्या हो गया है ?

—ये ठीक से खाते ही नही, माईजी !—दुल्हन सिसकती हुई बोली।

—कोई दवा-इलाज हो रहा है ?—माँ ने पूछा।

—मुझे क्या मालूम, माईजी।

—अच्छा, चल, जल्दी इसका नाश्ता तो ला।

दुल्हन रसोई मे चली गयी, तो माँ उसके पास बैठकर उसकी पीठ सहलाती हुई बोली—क्या हुआ है तुझे, बेटा ? मुझे तो बता ! मैं कहती थी, तू इतना काम मत किया कर, लेकिन तूने न माना, न माना !—फिर भी वह कुछ न बोला।

नाश्ता आया, तो माँ ने अपने सामने उसे खिलाया। उसे भर गिलास दूध पिलाया।

खा-पीकर वह उठा और मेज की ओर जाकर प्रूफ का पुलिंदा उठाने लगा।

यह देखकर माँ उसके पास आ बोली—नही, अब तू कही न जायेगा ! रख इसे ! जब तक तू बिलकुल ठीक नही हो जाता, मैं तुझे कही भी आने-जाने न दूँगी ! चल, तू बिस्तर पर लेट !—और उसने खटाक से बाहर का दरवाजा बंद कर लिया।

उस दिन उसे देखने आने वालों का जो ताँता शुरू हुआ, वह रात दस बजे तक चलता रहा। उनमें अधिकतर बुद्धिजीवी थे और थोड़े व्यवसायी थे। कोई भी आकर दरवाजा खटखटाता, तो माँ ८९५

कर उसे शका की दृष्टि से देखनी और सीधे पूछनी—आपको उससे कोई काम है क्या ?

अगर सामने का आदमी कहता नही, मैं तो उन्हें देखने आया हूँ—तो उसे वह अदर उसके पास जाने देती। लेकिन अगर वह कहता—हाँ, कल वे प्रूफ लाये थे—तो वह फटकारकर कहती—कोई प्रूफ-व्रूफ नही है यहाँ ! भाग जाओ यहाँ से ! तुम लोगो ने तो काम ले-लेकर उसका दिमाग ही खराब करके रख दिया है !—और खटाक से दरवाजा वद कर देती।

वह चुपचाप बिस्तर पर आँखें खोले लेटा रहा। कोई आकर उसके पास बैठता और उससे हाल पूछता, तो वह एक बार उसकी ओर शून्य दृष्टि से देखता और फिर मुँह फेरकर पहले ही की तरह छत की ओर देखने लगता, बोलता कुछ नही।

—आपको इतना काम नही करना चाहिए था। आदमी की शक्ति की भी आखिर एक सीमा है और आदमी के लिए आराम भी उतना ही आवश्यक है, जितना काम।

जैसे वह कुछ भी नही सुन रहा था। आदमी थोड़ी देर तक उसके पास बैठा अफसोस की साँस लेता रहता। फिर उठते हुए कहता—अच्छा, तो अब चलता हूँ। आप खूब आराम कीजिये, खूब सोइये और हल्का भोजन कीजिये।

आदमी जाते-जाते माँ को भी यही सब सलाह देता है। तब माँ कहती—आप तो यहाँ कई डॉक्टरो को जानते होगे, किसी को इसे दिखा दीजिये न !

—हाँ-हाँ, जरूर दिखाऊँगा !—आदमी कहता—आप घबराइये नही, माताजी ! इनकी दवा सिर्फ आराम है। बर्षो से इन्होने आराम किया ही नही !

रात के करीब साढे नौ बजे एक कार उनके घर के सामने रुकी। उस पर से पाँच व्यक्ति उतरे। उनमे एक प्रेस-व्यवसायी था और चार बुद्धि-जीवी। कार प्रेस-व्यवसायी की थी। वे सीधे कॉफी हाउस से एक साथ ही उसे देखने आये थे। उसे लेकर कॉफी हाउस मे उनके बीच बड़ी बहस हुई थी। यह बहस रास्ते मे भी जारी थी। व्यवसायी बडा ही तपा हुआ आदमी

नपद का काम हूँ (कविता संग्रह : 1981)
परघान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

था। वह अकेले ही चारों बुद्धिजीवियों से भिड़ा हुआ था। यह मानने को वह कतई तैयार न था कि उसकी विक्षिप्तता में प्रेस-व्यवसायियों का कोई संबंध हो सकता है।

उनमें से एक उत्साही युवक बुद्धिजीवी ने आगे बढ़कर दरवाजा खट-खटाया। माँ ने दरवाजा खोलकर अपना वही सवाल किया, तो युवक ने कहा—नहीं, हम लोग उनके लेखक मित्र हैं, उन्हें देखने आये हैं। हाँ, यह···

वह व्यवसायी की ओर इशारा [illegible] व्यवसायी जोर से हँस पड़ा और [illegible]—[illegible], [illegible] लोग उनके शुभचिंतक हैं, आप घबराइये नहीं।

वे अंदर जाकर उसके विस्तर [illegible] लेटा था। उसने सबकी ओर एक [illegible] और फिर अपनी मुद्रा में आ गया। [illegible]—देख रहे हैं आप अपने शिकार [illegible]

—बड़ा आदमी बनने की कामना करना अपराध नहीं है—व्यवसायी ने जैसे अपनी नाक युवक के मुँह में घुसेड़ते हुए कहा—ये उच्च शिक्षा प्राप्त लेखक हैं। इन्हें इतनी तो समझ होनी चाहिए कि केवल काम करके कोई बड़ा आदमी बन सकता, तो हमारे देश के सभी मजदूर और किसान करोड़पति होते !—कहकर उसने फुस्स-से हँस दिया।

युवक एक क्षण के लिए अवाक् हो गया। दूसरे बुद्धिजीवी भी सहसा कुछ न कह पाये। युवक ने तब किसी तरह अपने को सँभालकर कहा—क्या मतलब ?

—आप लोग बड़े-बड़े बुद्धिजीवी हैं—व्यवसायी ने विजेता की मुस्कान अपने होंठों पर लाकर कहा—मेरी बात का मतलब समझना क्या इतना मुश्किल है ?

और बरबस अपने होंठों की मुस्कान में दबाये हुए अट्टहास को उसने बम की तरह उन लोगों पर फोड़ दिया। ●

सग्रह : 1981)

सरघान (कविता संग्रह : 1984)

50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लड़का

थोड़ी-थोड़ी देर में लड़का कमरे से निकलकर बाहर के दरवाजे पर जाता था, कुंडी खोलकर, एक पल्ला फफराकर झांकता था, फिर पल्ला भेडकर, कुंडी चढाकर वापस ताईजी के पास आकर कहता था, 'ताऊजी अभी नही आये।'

ताईजी उसे बार-बार मनाकर चुकी थी, बार-बार समझा चुकी थी कि ताऊजी ठीक सवा बजे आयेंगे, उसके पहले वे आ ही नही सकते। तुम खामखाह के लिए क्यों परेशान हो रहे हो ? तुम मेरे पास पलंग पर लेटे रहो, तुम्हारे ताऊजी आयेंगे, तो ड्राइवर हार्न बजायेगा। फिर जाकर तुम्ही दरवाजा खोलना। तब तक न हो, तुम घड़ी की ओर देखते रहो।

लेकिन लड़का मान न रहा था। वह थोड़ी देर के लिए ताईजी के पास पलंग पर आ लेटता, लेकिन फिर उठकर चल पड़ता।

ताईजी उसे एकाध बार हल्के से डांट भी चुकी थी, एकाध बार यह धमकी भी दे चुकी थी कि नही मानते तो मैं ताऊजी के आने पर उनसे तुम्हारी शिकायत करूंगी कि तुम मेरा कहना नही मानते। फिर भी लडका नही माना था, तो उन्होने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया था और अपनी किताब मे जुट गयी थी। लड़का लौटकर ताऊजी के न आने की सूचना

देता तो भी अब वे कुछ न बोलतीं। उनका खयाल था कि लड़का उनकी चुप्पी का कारण नाराजगी समझकर आप ही अपनी हरकत से बाज आयेगा। लेकिन उनका यह खयाल भी गलत निकला था। लड़का बराबर जाता-आता रहा और उन्हें बताता रहा कि ताऊजी अभी नहीं आये।

अभी साढ़े बारह बजे थे। ताईजी किताब पढ रही थीं और सोच रही थीं कि लडका मानता नहीं। इसकी आवाजाही अभी पौने घंटे तक और चलती रहेगी। अब इसे जबर्दस्ती पलग पर लिटा दिया जाये तो कैसा? खुद तो हैरान हो रहा है, मुझे भी हैरान करके रख दिया।

लेकिन वे वैसा न कर सकीं। उन्हें बार-बार बस एक ही बात का अफसोस हो रहा था कि मैंने कल क्यों इसकी जिद मान ली थी और इसे बाबूजी के साथ कारखाने जाने दिया था?

कल शाम को जब लड़का बाबूजी के साथ कारखाने से लौटा था, तो बेहद डरा हुआ था। उसका मुंह सूखा हुआ था और उसकी आँखों में दहशत भरी हुई थी। ताईजी ने लडके को उस रूप में देखकर उसे अपनी ओर खींच लिया था और उसके मुंह पर हाथ फेरते हुए पूछा था, 'क्या बात है, भैया? तुम…'

लडका उनकी गोद मे चिपक गया था और बाबूजी ने हँसकर कहा था, 'खामखाह के लिए डर गया है। आज कारखाने मे मजदूरों ने थोड़ा उत्पात मचाया था, वही देखकर यह डर गया है। रास्ते मे मुझसे पूछ रहा था—ताऊजी, पुलिस न आयी होती तो वे हमको मार देते क्या?' कहकर वे फिर हँस पडे थे।

मजदूरों के उत्पात की बात जानकर ताईजी भी विचलित हो उठी थीं। पूरा ब्यौरा जानने के लिए उन्होंने बाबूजी की ओर अपना मुंह उठाकर कुछ पूछना ही चाहा था कि उन्होंने आँखों से संकेत करके उन्हें रोक दिया था और कहा था, 'भैया का हाथ-मुंह धुलाकर, इन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओ, ये भूखे होंगे'. फिर लड़के से कहा था, 'जाओ, भैया, ताईजी के साथ जाओ! भला, हमें कौन मार सकता है?'

प्रह: 1981)

भरपात (कविता संग्रह : 1984)

50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लड़का ताऊजी के मुँह की ओर देखते हुए ताईजी के साथ स्नान-घर की ओर चला आया था। उसे पीढ़ी पर बैठाकर ताईजी उसका मुँह धुलाने लगी थी, तो वह फुसफुसाकर बोला था, 'ताईजी, वे बहुत सारे थे। मुट्ठियाँ ताने हुए वे चिल्ला रहे थे। उनके नथुने फड़क रहे थे और उनकी फैली हुई आँखों की ओर देखकर डर लगता था। कितने भयकर हैं वे लोग !'

'क्या कह रहे थे वे लोग ?' ताईजी ने पूछा था।

'पता नहीं क्या कह रहे थे, मेरी समझ मे कुछ न आ रहा था। मैं तो डर के मारे बौखला गया था। ताईजी, मेरी समझ मे क्या आता ? ताऊजी से कुछ पूछने की भी मेरी हिम्मत न हो रही थी। मैं तो चुपचाप दुबका हुआ ताऊजी की बगल मे खड़ा रहा।'

'वे तुम्हारे ताऊजी के कमरे मे आये थे क्या ?' ताईजी ने पूछा था।

'नहीं, कमरे मे तो नहीं आये', आँखें झपकाकर लड़का बोला था, 'लेकिन दरवाजे पर भिडे हुए वे खडे थे और ओसारे में खचाखच भरे हुए थे, मुझे बार-बार लगता था कि वे कमरे मे आ जायेंगे और जब ऐसा लगता था तो ताईजी, मेरी टाँगें काँपने लगती थीं और मैं ताऊजी की बाँह पकड लेता था।'

'तुम्हारे ताऊजी के कमरे के दरवाजे पर तो दो दरवान खड़े रहते हैं, वे किसी को भी तुम्हारे ताऊजी की इजाजत के बिना अंदर नहीं जाने देते', ताईजी ने कहा था।

'पर्दे के उधर दरबान खडे थे, ताईजी', लडका बोला था, 'लेकिन वे दो दरबान इतने सारे लोगों को कैसे रोक पाते ? मैं देख रहा था कि उनकी मुट्ठियाँ पड़ने से पर्दा बार-बार हिल उठता था। लेकिन दरबान उन्हें रोकते नहीं थे।'

'लेकिन वे अंदर आये तो नहीं', ताईजी ने कहा था।

'पुलिस न आयी होती तो वे जरूर अंदर आ जाते, ताईजी ! वह तो अचानक एक पुलिस अफसर कमरे के अंदर आ ताऊजी के सामने कुर्सी पर बैठ गया और बाहर दरवाजे पर लाल पगड़ियाँ और लाठियाँ दिखायी देने लगीं। फिर अचानक ही बाहर बड़ा हो-हल्ला शुरू हो गया। पु
उठकर बाहर चला गया। और, ताईजी, उसके बाहर जाते ही

पर्दे के बाहर ओसारे में कितनी ही लाठियाँ उठने-गिरने लगी और चीखों-पुकारों की आवाजें आने लगी। फिर अचानक ओसारे मे ओले की तरह कुछ पड़-पड बजने लगा फिर अचानक ही बगल की दीवार पर कुछ फटाक से बज उठा। यह ईंट का एक बडा टुकडा था, जो दीवार से टकराकर हमारे सामने फर्श पर आ गिरा था। मैं तो काँप उठा और ताऊजी की बगल से चिपट गया। तभी दरबानो ने आकर दरवाजा और खिड़कियाँ अंदर से बंद कर ली। अब दरवाजों और खिडकियों पर भी ओले पड़पडाने लगे। डर के मारे मेरा बुरा हाल हो रहा था। आखिर मैंने ताऊजी से कहा, ताऊजी, घर चलिये !'

'और फिर तुम लोग चले आये, यही न ?' ताईजी ने पूछा था।

'नही, तभी कहाँ आये ?' लड़का बोला था, 'ताऊजी ने मेरी पीठ ठोक-कर कहा—घबराओ नही, चलते हैं। फिर एक-एक कर कई लोग अंदर के दरवाजे से कमरे मे आये और ताऊजी के सामने कुर्सियों पर बैठ गये। फिर उनमे बाते होने लगी। बाहर से अब कोई आवाज न आ रही थी दरवाजा और खिड़कियाँ बद होने के कारण मैं कुछ भी देख न सकता था। अब मेरे मन मे बस एक ही बात आ रही थी कि ताऊजी जल्दी से जल्दी घर चलें।'

'मैंने तो तुम्हें मना किया था', तौलिये से उसके हाथ-मुँह पोंछती हुई ताईजी बोली थी, 'तुम्ही नही माने न ! अब कभी ताऊजी के साथ कारखाने मत जाना। आजकल मजदूरो का कोई ठिकाना नही है। जाने कब क्या कर बैठें।'

'वे तो बड़े भयंकर लोग हैं, ताईजी !' लडका फिर आँखें झपकाते हुए बोला था, 'उनकी लहराती हुई मुट्ठियों और भयानक चेहरो की याद करके मेरे तो रोंगटे खडे हो जाते हैं। पुलिस न आयी होती तो वे हमें जरूर मार देते, ताईजी ! कितनी बडी ईंट उन्होने कमरे मे फेंकी थी। कही हमे लग गयी होती तो क्या होता, ताईजी ?···आप ताऊजी को भी अब कारखाने मत जाने दीजिये।'

'अच्छा, अच्छा', कहकर ताईजी ने नौकर को पुकारा था और उससे खाने के कमरे में जलपान लगाने को कहा था।

लेकिन लडके ने न तो मन से जलपान किया था और न रात को मन

नवदर का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
अरधान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

से खाया ही था। वह रह-रहकर ताऊजी का मुँह निहारता था और लगता था कि वह कुछ पूछना चाहता है। लेकिन फिर वह कुछ भी न पूछता था।

रात को वह अच्छी तरह सोया भी न था। ताईजी ने बड़ी देर तक उसके सोने का इंतजार किया था। लेकिन वह बराबर खुदबुदाता ही रहा था, तो उन्होने पूछा था, 'क्या बात है, सो क्यो नही रहे हो ?'

'ताऊजी के पास में सो रहूँ, ताईजी ?' लड़के ने पूछा था।

तब ताऊजी ने ही हँसकर कहा था, 'आ जा, आ जा, भैया ! जानता हूँ, तुझे ताऊजी की चिंता मारे डाल रही है।'

लेकिन ताऊजी के भी पास जाकर वह बड़ी देर तक जागता रहा था। ताऊजी ने उसे कोई कहानी सुनाना चाहा था, तो वह बोला था, 'आज कहानी नही सुनेंगे। नीद आ रही है।'

लेकिन वह झूठ बोल रहा था, उसे नीद न आ रही थी। फिर भी उन लोगो ने कुछ भी न कहा था। सोचा था कि शायद चुपचाप रहने से लड़का सो जाये।

फिर भी वह बड़ी देर तक न सोया था। ताईजी इंतजार कर रही थी कि वह सो जाये तो वे बाबूजी से आज की वारदात के बारे में ठीक से पूछें। इस बीच लडके ने कुछ पूछने का अवसर ही न दिया था। वह बराबर अपने ताऊजी के साथ चिपका रहा था। रोज की तरह शाम को लड़को के साथ खेलने भी वह बाहर न गया था। ताईजी को तो अब चिंता भी हो रही थी कि कही इसके कोमल मन पर कोई आघात न पहुँचा हो। आठ साल का, पराये घर का लड़का, कही इसे कुछ हो गया तो क्या होगा ? हमारे कोई बाल-बच्चा नही है, लोग यों ही जाने क्या-क्या बका करते हैं। तब तो लोग और भी जाने क्या-क्या कहने लगें।

ताऊजी रह-रहकर धीमे से हँस पड़ते थे। कहते थे, 'देखती हो, यह अपने हाथ से मेरा मुँह टटोल रहा है···अरे भाई, मुझे कुछ भी नही हुआ है, और कुछ भी नही होगा। तुम आराम से सो जाओ। उन्हें पुलिस पकड़ ले गयी है, वे इस वक्त हवालात में होगे।'

'सबको पकड ले गयी है, ताऊजी ?' लडका पट से पूछ बैठा था।

'नही, भैया', ताऊजी बोले थे, 'सबको पकड़ने की जरूरत नही पडती, सरगने पकड़े जाते हैं। फिर तो बाकी लोग शांत हो जाते है। तुम कोई चिंता मत करो। सब ठीक हो जायेगा। ऐसी घटनाएँ तो पहले भी कई बार घट चुकी है। मुझे कभी कुछ नही हुआ, भैया। आखिर नुकसान मजदूरो को ही उठाना पडा। तुम सो जाओ, बेटा!'

फिर भी काफी देर बाद ताऊजी को महसूस हुआ कि उनकी पीठ पर रखा हुआ लडके का हाथ ढीला हुआ है। उसकी ओर से आश्वस्त होकर ही उन्होने कहा था, 'लो, लडका सो गया। अब तुम भी सो रहो, बडी रात बीत गयी। कोई खास बात नही हुई। कल देखना है कि क्या होता है। कोई मजदूर नही मानेंगे, तो कारखाना कुछ दिनों के लिए बद कर देंगे। कोई चिंता की बात नही है।···आज सच पूछो तो मुझे एक बात की खुशी ही हुई है। यह लडका मुझे बहुत प्यार करता है। आज ही मुझे मालूम हुआ है। कौन जाने, अपना लड़का होता तो वह मुझे इतना प्यार करता कि नही।'

'हम भी तो इसे अपने बेटे से बढकर प्यार करते है', ताईजी ने कहा था, 'लेकिन सुनो जी, इसके मन पर कोई आघात तो न पहुँचा होगा? आज यह इस तरह···'

तभी लडका नीद मे चौककर बडबडा उठा। 'ताऊजी! भागिये! भागिये! वे आ रहे हैं।···'

मुँह से थू-थू कर ताऊजी लड़के की पीठ पर हाथ फेरने लगे थे।

लडके का बड़बडाना खत्म हुआ था, तो ताईजी ने अपनी कमर से तालियो का गुच्छा निकालकर बाबूजी की ओर बढाते हुए कहा था, 'इसे उसके सिरहाने रख दो और उसे गोद मे लेकर सो रहो।'

सुबह उन्होने उसे सोते ही छोड दिया था। बाबूजी जल्दी-जल्दी जलपान करके कारखाने चले गये थे। जाते समय वे कह गये थे कि भैया पूछे तो कह देना कि बाजार गये है, तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी चीजें लायेंगे।

लड़के ने सच ही उठते ही पूछा था, 'ताऊजी कहाँ हैं?'

'वे बाजार गये हैं', ताईजी ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा था, 'तुम्हारे

नवम का काव्य (कविता संग्रह : 1981)
प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लिए अच्छी-अच्छी चीजें लायेंगे। तुम चलो, जल्दी हाथ-मुँह धोकर जलपान तो करो।'

जलपान पर बैठकर लड़के ने फिर पूछा था, 'ताऊजी कब तक आयेंगे ?'

ताईजी ने कुछ सोचकर कहा था, 'कह गये हैं कि सवा बजे तक आयेंगे।'

'सवा बजे तो ताऊजी कारखाने से आते हैं', लड़का चट बोल उठा था, 'ताईजी, सच बताइये, ताऊजी कारखाने गये हैं क्या ?'

'नही, बाजार गये हैं', ताईजी ने उसे फिर बहलाया था, 'देखना, तुम्हारे लिए वे अच्छी-अच्छी चीजें लायेंगे।'

'इतनी देर तक वे बाजार मे क्या करेंगे ?' लड़के ने पूछा था, 'ताईजी, मैं कारखाने फोन करूँ क्या ?'

ताईजी फिर तो साफ झूठ बोल गयी थी, 'कारखाने फोन नही हो सकता। कल मजदूरों ने फोन का तार काट दिया था, तुम्हारे ताऊजी बता रहे थे। तुम चलो, नहा-धोकर कपड़े बदलो। तुम्हारे अध्यापक आ रहे होंगे।'

'आज मैं नही पढ़ूँगा, ताईजी, मन नही कर रहा है', लड़के ने सिर हिलाकर कहा था।

'तो फिर अपने अध्यापकजी के साथ सिनेमा देख आओ। तुम्हारे लौटने तक तुम्हारे ताऊजी भी आ जायेंगे।'

'नही, मैं सिनेमा भी नही जाऊँगा', लड़के ने मुँह लटकाकर कहा था, 'ताईजी, हम बाजार चलें तो वहाँ ताऊजी से भेंट हो जायेगी ?'

'ताईजी अब परेशान हो उठी थी। बोली थी, 'जाने वे किस बाजार गये हैं। हम उन्हे कहाँ-कहाँ ढूँढते फिरेंगे ?'

'गाड़ी से बाजारों में घूमने में क्या देर लगेगी ? चलिये, ताईजी !' लड़के ने अब मचलकर उनका हाथ पकड़ते हुए कहा था।

'अच्छा, चलो ! तुम नहा-धोकर जल्दी तैयार हो जाओ', ताईजी ने कुछ सोचकर कहा था, 'मैं भी तैयार होती हूँ।'

फिर उन्होने बाजारों का चक्कर लगाया था। लड़के ने ड्राइवर और ताईजी को ताकीद कर दी कि वे ताऊजी को देखते रहें और खुद दरवाजे

पर खडे होकर देखने लगा था। ताईजी ने कई बार उससे कुछ खरीदने के लिए कहा था, लेकिन वह तैयार न हुआ। बराबर यही कहता रहा था, 'पहले ताऊजी को तो ढूँढ लूँ!'

लेकिन ताऊजी बाजारों मे कहाँ थे कि मिलते? लाचार वे वापस हुए थे। लडका अब निराश होकर सीट पर बैठ गया था। ताईजी ने समझाया था, 'मैं कह रही थी न कि वे नही मिलेंगे। इस तरह ढूँढने से कोई भी नही मिलता। कौन जाने, जब हम इस बाजार मे थे, तो वे उस बाजार में हों, और जब हम उस बाजार मे थे, तो वे इस बाजार में हों।'

'लेकिन उनकी गाडी तो कही सडक पर आते-जाते दिखायी पड़ती?' लड़के ने पूछा था।

'तुमने गाड़ी भी देखी थी क्या?' ताईजी ने पूछा था।

'हाँ, मैंने हर गाड़ी देखी थी', लड़के ने बताया था, 'ताऊजी की गाड़ी फिर भी उसे कही दिखायी ही नही पड़ी।'

'बाजारो को कई-कई सडकें जाती हैं, भैया', ताईजी ने समझाने की कोशिश की थी, 'कौन जाने हम इस सडक से आ रहे हों, तो वे उस सड़क से निकल गये हों। ताऊजी आयें, तो उनसे पूछना, वे बतायेंगे।'

'कितने बज गये हैं?' तब लड़के ने पूछा था।

'साढ़े ग्यारह।'

'तब तो अभी बहुत समय है', लडके ने कहा था, 'ताईजी, क्या ताऊजी सवा बजे से पहले नही आ सकते?'

'नहीं', ताईजी ने कहा था, 'तुम तो जानते हो, वे वक्त के बहुत पाबंद हैं। जो वक्त देकर वे जाते हैं, ठीक उसी वक्त पर आते हैं। तुम देख लेना वे ठीक सवा बजे आयेंगे।'

फिर भी लडके को चैन कहाँ था? पर लौटकर कमरे से बाहर के दरवाजे और दरवाजे से कमरे मे उसकी आवाजाही शुरू हो गयी थी।

एक बजा तो लड़का बाहर के दरवाजे पर जा अड़ा। ताईजी ने कई बार उसे पुकारा, लेकिन वह अनसुना कर गया।

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—47000

अंदर-बाहर सभी ओसारों में मोटे टाट के पर्दे गिरे हुए थे, फिर भी ताईजी को लग रहा था कि कहीं लड़के को गर्म हवा न लग जाये। उन्होंने एक नौकर को बुलाकर ताकीद की कि जाकर भैया के पास दरवाजे पर खड़े रहो और देखो कि कहीं वह पर्दे के बाहर न जाये। बाहर लू चल रही होगी।

सायबान में गाड़ी रुकने की आवाज आयी तो लड़का बेतहाशा ओसारे में भागा, लेकिन नौकर ने उसे पकड़ लिया। लड़का अपने को छुड़ाने के लिए छटपटाने लगा कि पर्दा उठाकर ताऊजी अंदर आये और बोले, 'यह क्या हो रहा है?'

नौकर लड़के को छोड़कर बोला, 'ये बाहर जा रहे थे···'

लड़का ताऊजी से लिपट गया और उनका मुंह ताकते हुए पूछा, 'ताऊजी, आप कारखाने गये थे क्या?'

उसका गाल थपथपाते हुए ताऊजी ने हँसकर कहा, 'नहीं, मैं तो बाजार गया था, देखो, तुम्हारे लिए क्या-क्या चीजें लाया हूँ।'

पास में ही ड्राइवर बहुत सारी चीजें हाथों में और गोद में सँभाले हुए खड़ा था। लेकिन लड़के ने उधर देखा ही नहीं। वह कह रहा था, 'हमने तो सब बाजार छान मारे, आप कहीं भी दिखायी नहीं पड़े। आप किस बाजार मे थे ताऊजी?'

'बताता हूँ', उसका हाथ पकड़कर उसे अदर ले जाते हुए ताऊजी बोले, 'तुम अदर चलो। आज बड़ी तेज लू चल रही है। मेरा गला सूख रहा है। पहले पानी पी लूं, फिर बातें करेंगे।'

वे अदर आये, तो ताईजी पलग से उतरते हुए कुछ कहने वाली ही थी कि बाबूजी कपड़े उतारते हुए बोले, 'भाई, आज तो बड़ी लू चल रही है। प्यास के मारे मेरा गला खुश्क हो रहा है। जल्दी पानी मँगाओ।'

'ताऊजी!···'

लड़के की बात बीच ही मे काटकर ताऊजी बोले, 'भैया, तुम्हारा यह वक्त आराम करने का है न। तुम इस वक्त ओसारे में क्या कर रहे थे?'

लड़का रुनवखा हो उनका मुँह निहारने लगा। तभी उनकी ओर गिलास बढ़ाते हुए ताईजी बोल पड़ी, 'यह तो आज सुबह से ही ताऊजी-

ताऊजी की रट लगाये हुए है। न भोजन किया है, न एक पल को लेटा है। सभी बाजारों मे चक्कर लगवाये हैं और फिर कमरे से बाहर के दरवाजे पर और दरवाजे से कमरे मे और ताऊजी अभी नही आये—ताऊजी अभी नही आये !'

'ओह !' व्यस्त होकर ताऊजी बोले, 'तब तो जल्दी थाली लगवाओ। पहले हम भोजन कर लें, फिर कुछ होगा। ले जाओ, इसका हाथ-मुँह धुलवाओ। बाप रे बाप ! यह वक्त हो रहा है और इसने अभी तक भोजन नही किया !'

लड़के को मेज पर सिर लटकाये हुए देखकर ताऊजी ने कहा, 'आओ, मैं तुम्हें अपने हाथ से खिलाता हूँ।'

लड़का किसी तरह मिचरा-मिचराकर खाने लगा। ताऊजी उसे समझाने लगे, 'भाई, ये मजदूर तो बड़े ही मामूली लोग होते है। भला उनसे हमारा क्या मुकाबला है ? हमारे यहाँ वे चाकरी करते हैं, हम उन्हें तनखाह देते हैं। हम उन्हे चाकरी से अलग कर दें, तो वे भूखो मर जाये। तुम खामखाह के लिए सोचते हो कि वे हमे मार सकते हैं। यह बात तुम अपने दिमाग से निकाल दो भैया। आराम से भोजन करके जाकर सो जाओ। मैं फिर कभी किसी दिन तुम्हें कारखाने ले चलूँगा और वहाँ किसी मजदूर को तुम्हारे सामने ही बुलवाऊँगा। फिर तुम देखना कि वह मेरे साथ किस तरह पेश आता है।'

लेकिन लड़का सिर झुकाये रहा और वैसे ही मिचरा-मिचराकर खाता रहा।

सब एक साथ ही मेज से उठे तो लड़का सिर झुकाये हुए ही बोला, 'ताऊजी, मै आपके साथ ही आराम करूँगा।'

ताऊजी ने हँसते हुए उसकी ओर देखा और कहा, 'ठीक है, चलो।'

ताऊजी पलंग पर लेटने ही वाले थे कि टनन-टनन घंटी बज उठी।

नौकर ने बाहर जाकर देखा, तो कोई दो मामूली से आदमी खड़े थे। उसने उनसे पूछा, 'क्या बात है ?'

नयन का काव्य (कविता संग्रह : 1981)
प्रयाण (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

'हम बिजलीघर के मजदूर हैं', उनमें से एक बोला, 'कोठी की बिजली काटने आये हैं। साहब से बोल दो और यह कागज है, दिखा दो।'

'साहब तो आराम कर रहे हैं', नौकर ने कहा।

'तो किसी को भी खबर कर दो, हम बिजली काटने जा रहे हैं', दूसरे ने कहा।

'नहीं-नहीं, रुको', नौकर ने कहा, 'हम लौटकर बताते हैं।'

नौकर ने दरवाजे पर खड़े हो धीरे से पुकारा, 'रानी माँ!'

'क्या है?' अंदर से ताईजी बोली, 'बाहर कौन आया है?'

'बिजलीघर के मजदूर हैं, रानी माँ', नौकर ने बताया, 'बिजली काटने आये हैं! यह कागज है।'

ताईजी ने दरवाजा खोलकर नौकर से कागज ले लिया और बाबूजी के पास जाकर बोलीं, 'देखो जी, यह कैसा कागज है? नौकर कहता है कि बिजली काटने बिजलीघर से मजदूर आये हैं! यह कैसे हो सकता है?'

'मजदूर?' लड़का जोर से बोलता हुआ पलंग पर उठ बैठा।

कागज लेते हुए ताऊजी ने हँसकर लड़के की ओर देखा और बोले, 'तुम चुपचाप लेटो।'

'वे बिजली काट देंगे, ताऊजी?' लड़के ने फिर पूछा।

'नहीं, हमारी बिजली कोई नहीं काट सकता!' ताऊजी कागज देखते हुए बोले, 'तुम चुपचाप लेटो। मैं उनसे बात करता हूँ।'

पलंग से उतरते हुए लड़का बोला, 'ताऊजी, आप मत जाइये, जो कहना हो नौकर से कहला दीजिये।'

ताऊजी फिर हँस पड़े। बोले, 'अरे···' शेष बात वे पी गये। अचानक उन्हें कुछ सूझ गया। बोले, 'आओ, तुम भी मेरे साथ आओ। तुमने तो हद कर दी, यार!'

लड़का काँप उठा। लेकिन उसका हाथ ताऊजी के हाथ में था और वे उसे घसीटते हुए-से कमरे से बाहर आये और एक नौकर को बुलाकर कहा, 'बैठक खोलो और बाहर जो मजदूर खड़े हैं, उन्हें बुलाओ।'

ताऊजी लडके के साथ एक कोच पर बैठ गये, तो नौकर मजदूरो को बुलाने ओसारे मे गया।

लड़का ताऊजी से बिलकुल सटकर बैठा था, फिर भी कांप रहा था और आंखे फाडकर दरवाजे की ओर देख रहा था।

मजदूर दरवाजे पर आ खडे हुए, तो लडका ताऊजी के पास और सट गया। ताऊजी ने मजदूरो से कहा, 'अंदर आ जाओ और दरवाजा बंद कर लो, बाहर से गर्म हवा आ रही है।'

दरवाजा उढगा कर उससे सटकर ही मजदूर खड़े हो गये, तो ताऊजी अजीब लहजे मे बोले, 'वहाँ क्यो खडे हो गये, सोफे पर आकर बैठ जाओ।'

मजदूर वही फर्श पर बैठ गये। एक दांत दिखाते हुए बोला, 'हमारे लिए यही जगह ठीक है, सरकार। आप कहिये, क्या हुकुम है?'

लडके की पलके इतनी देर बाद झपक उठी। उसकी कँपकँपाहट भी थोडी कम हो गयी। फिर भी उसकी आँखें मजदूरो पर ही टँकी थी, जैसे वह उन अजनबियों को अच्छी तरह देख-समझ लेना चाहता था।

'तुम लोग इस वक्त यहाँ क्यों आये?' ताऊजी थोडा बिगडकर बोले, 'तुम लोगो को इतनी भी समझ नही कि यह शरीफो के आराम करने का समय होता है?'

'सरकार·· हम···हम तो ताबेदार है, जो दफ्तर से हुकुम हुआ···' हकलाकर बोलते हुए एक मजदूर बीच मे ही चुप हो गया।

लडके की पलके कई बार पट-पट झपक उठी।

'किस नामाकूल आदमी ने तुम लोगो को यह हुक्म दिया है कि तुम लोग हमारे आराम मे खलल डालो? जरा बताओ तो मैं अभी इजीनियर साहब को फोन करूँ और उसे इस बेहूदा हरकत का मजा चखा दूं!' बिगड-कर ताऊजी ने पूछा।

'सरकार, वह कागज···', सहमी आवाज मे एक मजदूर ने अधकटी बात कही।

लडके के चेहरे का रग वापस आने लगा। उसके होठ थोडा खुल गये और ताऊजी के पास से जरा हटकर वह ठीक से बैठ गया।

कागज मजदूरो की ओर फेंकते हुए ताऊजी गरज पड़े, 'इसमे क्या है?

(कविता संग्रह : 1981)
परधान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

तुम लोग कुछ पढ़े-लिखे हो ?'

'जी, मकान का नबर···'

'क्या नंबर है मकान का ?' ताऊजी मजदूरों की ओर ऐसे हाथ उठाकर बोले जैसे वे उन्हें मार देंगे।

लड़के के होठों पर एक मुस्कान उभर आयी। वह सोफे से उठ खड़ा हुआ।

एक मजदूर ने कागज उठाकर उसे देखते हुए कहा, 'जी, सात सौ आठ।'

लड़के ने जब देखा कि मजदूर के हाथ में वह कागज काँप रहा है, तो अचानक ही वह हँस पड़ा।

ताऊजी ने जबान ऐंठकर कहा, 'सात सौ आठ ! ठीक से देखो ! उसके आगे भी कुछ है ?'

दोनों मजदूर खड़े होकर कागज ध्यान से देखने लगे।

लड़के ने देखा कि अचानक मजदूरों के चेहरे फक पड़ गये। वे दरवाजे की ओर मुड़ते हुए बोले, 'माफ कीजिये। अच्छर पर हमारा ध्यान नही गया।

'ध्यान नही गया !' ताऊजी उठकर उन पर पिलते हुए बोले, 'गँवार ! जाहिल ! अरे, तुम लोगों को इतना तो सोचना चाहिए कि यह कोठी है, यहाँ का पैसा कभी भी बाकी नही पड़ सकता ! क्या नाम हैं तुम्हारे ? बताओ, मैं अभी इंजीनियर साहब को फोन करता हूँ !'

'माफ कर दीजिये, सरकार !' दोनो मजदूर गिड़गिड़ाकर बोले, 'गलती हो गयी।'

और वे पर्दा उठाकर सीढ़ियाँ उतर गये।

लड़का ताली बजाता हुआ ताईजी के पास जा पहुँचा। बोला, 'ताईजी ! ताईजी ! ताऊजी ने मजदूरों को डाँट दिया ! वे भाग खड़े हुए। ताईजी वे तो···वे तो··· •

एक खामोश मौत

बहुत बुरे दिन थे। कैसी दारुण स्थिति थी, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि एक रात मुझे अपनी गर्भवती पत्नी के साथ अपना घर-कुटुंब छोड़ देना पड़ा। पास मे शरीर के फटे-पुराने कपड़ो के सिवाय कुछ भी न था। बिना टिकट हमने दो स्टेशनो का सफर तय किया। पत्नी को उसके मायके छोड़कर मैं ससुरजी से कुछ रुपये लेकर किसी नौकरी की तलाश मे निकल पड़ा। कई जगहों से निराश होकर आखिर मैं इलाहाबाद अपने एक संबंधी के यहाँ पहुँचा। उन्ही की सहायता से कई दिनों के बाद एक साप्ताहिक मे तीस रुपये माहवार की एक नौकरी मिली।

साप्ताहिक के मालिक ही संपादक थे। उन्होंने अपने एक कमरे के कार्यालय के ऊपर सीढियों के पास की मियानी मे, जिसमें कागज का स्टाक रहता था, मुझे रहने की अनुमति इस शर्त पर दी कि मैं फाजिल वक्त मे उनके लड़के को पढा दिया करूँ और घर के छोटे-मोटे काम कर दिया करूँ।

कार्यालय मे मुझे सुबह नौ बजे से शाम छह बजे तक काम करना पड़ता। प्रूफ पढने से लेकर, पैकिंग, डिस्पैच और चपरासी तक का काम करना पड़ता। घर पर सुबह-शाम उनके लड़के को एक एक घंटा पढ़ाने के अलावा बाजार से सौदा-सुलुफ लाना पड़ता, आटा पिसाना, और किसी

इन्कलाब (कविता संग्रह : 1931)
अरमान (कविता संग्रह : 1934)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मेहमान के आने पर सेवक का काम भी करना पड़ता। कार्यालय और उनके घर का फासला करीब एक मील था। सुबह-शाम, दो-दो बार मुझे यह फासला पैदल ही तय करना पड़ता। रास्ते मे ही फुटपाथ की किसी दुकान से मैं रोज कुछ खा-पी लिया करता।

रात को जब मैं मियानी में घुसता, तो थकान से मेरा शरीर चूर-चूर होता। अँधेरे मे नंगे फर्श पर ही, शरीर के कपड़ों के साथ, मैं पड़ जाता। लेकिन नींद जल्दी न आती। जैसे जिंदगी की सारी चिंताएँ इसी घड़ी के इंतजार मे रहती। प्रेमा की याद आती। अपनी स्थिति पर रोना आता··· समझ में ही न आता कि इस तरह जिंदगी कैसे और कब तक कटेगी।

दो-दो, तीन-तीन रुपये करके तनखाह मिलती और खाने में ही खत्म हो जाती। कभी-कभी पैसा न मिलता तो मुझे भूखे ही रहना पड़ता।

इतनी तकलीफों और चिंताओं मे मेरे दिन कट रहे थे। फिर भी मैं प्रेमा को इनके विषय में कुछ भी न लिखता। वह मुझे बराबर कोई चिंता न करने और सेहत का खयाल रखने की ताकीद करती। कभी यों ही मैं लिख देता कि किसी चीज की जरूरत हो तो लिखो, तो जवाब में वह लिखती कि मुझे किसी चीज की जरूरत नही है। आप मेरी कोई चिंता न करें। यहाँ मुझे कोई भी कमी नहीं है।

करीब पाँच महीने बाद ससुरजी की चिट्ठी आयी, जिसमें बेटा होने की खबर और बधाई थी।

चिट्ठी पढकर खुशी के मारे एक क्षण को मेरा दिल धड़क उठा और फिर रुलाई फूट पडी। उस रात मियानी में पड़ा-पडा मैं बड़ी देर तक फूट-फूट कर रोता रहा, प्रेमा और बच्चे के पास पहुँचने का कोई भी रास्ता दिखायी न पडता था।

दूसरे दिन मैंने ससुरजी के नाम भी पत्र लिखा। बेटा पैदा होने पर अपनी खुशी जाहिर की और भगवान को धन्यवाद दिया। साथ ही यह भी लिखा कि छुट्टी नही मिल रही है, लेकिन जल्द आने की कोशिश करूँगा।

दो हफ्ते बाद प्रेमा की चिट्ठी आयी, जिसमें बच्चे की ही बातें अधिक थी। अंत मे उसने लिखा था कि आपने पिताजी के पत्र मे जल्दी आने को लिखा था, कब आ रहे हैं? एक दिन के लिए भी जरूर आ जाइये। बच्चे

का मुँह देख जाइये।

इस पत्र का उत्तर मैंने कई दिन तक न दिया। मन-ही-मन तड़पता रहा, फिर एक दिन साहस करके मैंने अपनी स्थिति उसे ठीक-ठीक लिख दी और अत मे अपने हृदय की सारी व्यथा उँडेलकर उसी से पूछा, प्रेमा, तुम्हीं बताओ, इस स्थिति में मैं क्या करूँ, तुम्हारे पास कैसे पहुँचूँ ? मेरे-जैसा अभागा भी क्या इस दुनिया मे कोई होगा ?

उसके बाद कई दिन बडी बेचैनी से कटे। प्रेमा क्या लिखती है, इसका इंतजार था। लेकिन अबकी उसका पत्र जल्दी नही आया।

इसी बीच एक शाम, कार्यालय बद होने का समय हुआ तो मालिक ने मुझे अपने पास बुलाया। उनकी मेज के सामने जाकर मैं खडा हुआ तो उन्होंने मेरी ओर एक किताब बढाकर कहा, 'मैंने इसमे एक कहानी पर निशान लगा दिया है। रात मे तुम इसका अनुवाद कर डालना। इस काम के लिए तुम्हें पाँच रुपये अलग से मिलेंगे।'

थोडी देर तक मैं उनका मुँह देखता रहा। फिर बोला, 'मियानी में रोशनी तो है नही, मैं कैसे काम करूँगा ?'

'तुमने बल्ब नही लगाया है क्या ?'

मैं फिर उनका मुँह ताकने लगा, तो वे बोले, 'अँधेरे मे कैसे रहते हो ? भलेमानस, एक बल्ब तो तुम्हें लगा लेना चाहिए था।' कहकर उन्होने जेब मे हाथ डाला, बटुआ निकालकर खोला और उसमे से दो रुपये निकालकर मेरी ओर बढाते हुए कहा, 'एक बल्ब और कागज-कलम-स्याही खरीद लेना। कहानी मुझे कल दे दो तो बहुत अच्छा। इसे अगले ही अंक में देना है। कुछ दिन तक हर अक मे एक विदेशी कहानी का अनुवाद छापने का मैंने कार्यक्रम बनाया है, तुमने ठीक अनुवाद किया तो महीने मे बीस-पच्चीस तुम्हारे ऊपर से बन जायेंगे। मैं खुद कहानियाँ चुनकर तुम्हें दिया करूँगा।'

उस रात मैं काफी उत्साह मे था। थकान का कहीं नाम भी न था। बीस-पच्चीस रुपये माहवार का आशामहल कोई मामूली ऊँचा न था। मुझे लगा कि अब मैं निश्चय ही प्रेमा के पास जा सकूँगा और शायद उसे अपने

छह (कविता संग्रह : 1981)
धरवान (कविता संग्रह : 1984)
50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

पास भी रख सकूँगा।

मियानी की रोशनी जैसे मेरी जिंदगी की रोशनी हो। मैंने इधर-उधर पड़े हुए बेठनों को फर्श पर बिछाया और बाकायदे अनुवाद के काम मे जुट गया। वह मोपासाँ की 'नेकलेस' कहानी थी। अँग्रेजी कोई बहुत मुश्किल न थी और फिर उस रात मेरे दिल-दिमाग की कुछ ऐसी कैफियत थी कि मुझे कुछ भी मुश्किल लग ही न रहा था। दनादन वाक्य पर वाक्य उतरते गये।

अनुवाद पूरा करके मैंने उसे दुहराया। मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि इतना अच्छा अनुवाद इतनी जल्दी मैंने कैसे कर लिया। मेरी खुशी का ठिकाना न था। इतनी देर मे मैंने पाँच रुपये का काम कर लिया था और मुझे लगा कि डेढ सौ रुपया महीना तो मैं आसानी से कमा सकता हूँ।

बत्ती गुल करके मैं बेठनो पर लेटा तो मेरा दिमाग उड़ने लगा। कार्यालय मे कई मासिक और साप्ताहिक पत्र आते थे। उन्हे देखने को मन तो होता था, लेकिन अवकाश ही न मिलता था। सोचा, ये पत्र-पत्रिकाएँ भी तो अनुवाद छाप सकती हैं। और मेरे मन में एक योजना रूप लेने लगी।

रात भर मैं जागता रहा और सोचता रहा। कितनी बाते सोच डाली, कोई हिसाब नही।

सुबह मालिक के घर के लिए चला तो अनुवाद साथ लेता गया और मिलते ही उनके हाथ मे थमा दिया। वे बोले, 'कर डाला क्या ?'

'जी हाँ', मैंने कहा, 'देख लीजिये, कैसा है। कुछ कमी रह गयी हो तो बता दीजियेगा, मैं ठीक कर दूँगा।'

घर के काम निबटाकर मैं चलने लगा तो मालिक ने मेरी पीठ ठोकते हुए कहा, 'बिल्कुल ठीक है। तुम इसे प्रेस मे देते जाओ। कह देना इसे तुरत कंपोज करा दें।'

रास्ते मे यों ही पन्नो को खोलकर देखा तो दंग रह गया। ऊपर अनुवादक के नाम की जगह मेरा नाम काटकर मालिक ने खुद अपना नाम लिख दिया था। बड़ी कोफ्त हुई। सारा उत्साह ही जाता रहा। पाँव बेदम से हो गये।

एक पुलिया पर बैठकर उदास, मन मे सोचने लगा कि यह क्या हो

गया? लेकिन अभी दो मिनट भी न बैठा हूँगा कि अचानक खयाल आया, इसी रास्ते से मालिक आ रहे होंगे, कहीं उन्होंने मुझे यहाँ बैठे देख लिया तो क्या होगा। मैं उठकर चलने लगा। लेकिन मुझसे चला ही न जा रहा था, लगता था मैं बेहद थक गया हूँ।

उस दिन मेरा मन उचटा रहा। मेरी शिथिलता देखकर ही शायद मालिक ने मुझे बुलाया। पूछा, 'क्या बात है? तुम आज अनमने-से लग रहे हो?'

मैं सिर झुकाये उनके सामने उदास खड़ा रहा। वही बोले, 'अनुवाद पर मैंने अपना नाम दे दिया है, तुम्हें दुख पहुँचा है क्या?—देखो भाई, अगर ऐसी बात है तो मैं अब भी तुम्हारा नाम दे सकता हूँ। लेकिन तब तुम्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलेगा। तुम नाम और दाम में से किसी एक को चुन लो···तुम्हें मैं बहुत कम तनख्वाह दे पाता हूँ, इसीलिए मैंने सोचा कि किसी और तरह से भी तुम्हारी कुछ मदद करूँ। तुम यह काम करते रहोगे तो बीस-पच्चीस महीने में और बन जायेंगे।' कहकर उन्होंने बटुए से निकालकर तीन रुपये मेरी ओर बढा दिये। बोले, 'अनुवाद का पैसा मैं तुरत दे दिया करूँगा। तुम एकाध कपड़ा बनवा लो। ये कपडे तो अब पहनने लायक नहीं है। माँ जी आज तुम्हारे बारे में कह रही थी। कुछ कपडे वे भी तुम्हें देंगी। अब जाडे के दिन सिर पर हैं। जाओ, मन छोटा मत करो। नाम में कुछ नहीं धरा है, काम ही महत्वपूर्ण है। और देखो।' उन्होंने जरा देर रुककर कहा, 'तुम नाम चाहते हो तो मैं एक तरकीब तुम्हें बताता हूँ। मुझे तो महीने में चार-पाँच कहानियों की ही जरूरत पड़ेगी। यह काम तुम चार-पाँच रातों में ही पूरा कर सकते हो। बाकी रातों में तुम चाहो तो मौलिक कहानियाँ लिख सकते हो या अनुवाद कर सकते हो और दूसरी जगहों पर छपने के लिए भेज सकते हो। हो सकता है कि इस तरह तुम्हें और भी पैसे मिल जायें। मेरे पास सभी विदेशी विख्यात कहानीकारों के संग्रह हैं। दो-चार संग्रह मैं तुम्हें दे दूँगा। चाहोगे तो अनुवाद करने के लिए कहानियाँ चुनने में भी मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूँ और तुम्हारी मौलिक कहानियों का संशोधन भी कर दिया करूँगा। मैं जानता हूँ, तुम जरूरतमंद आदमी

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
50. गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

हो। लेकिन भई, मेहनत करोगे तो तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। कल तुम्हारे एक संबंधी मिले थे। बता रहे थे कि तुम्हारे यहाँ लड़का हुआ है।'

अचानक उनकी यह बात सुनकर जाने मुझे क्या हुआ कि मैं अपनी *आँखें ढककर रो पड़ा।*

'बैठ जाओ, बैठ जाओ !' वे तत्पर होकर बोले, 'भाई, यह तो खुशी की बात है। तुम रोते क्यों हो ? देखो, समय सदा एक तरह से नहीं बीतता, तुम तो अभी बिल्कुल जवान हो। योग्यता की भी तुममें कमी नहीं है। मेहनत भी तुम कर सकते हो। फिर फ़िक्र करने की क्या जरूरत है ? एक दिन तुम जरूर सुखी होओगे। मैं कुछ देख-समझकर ही यह बात कह रहा हूँ। विश्वास करो। तुम अपने बच्चों को यहीं क्यों नहीं बुला लेते ? भाई, मुझसे जो हो सकेगा, मैं जरूर करूँगा। तुम लोग मियानी में रह सकते हो, बाहर थोड़ी-सी जगह है, वहाँ खाने-पकाने का काम हो सकता है।'

उनकी सहानुभूति पाकर मेरा दिल उमड़ आया। मैंने खड़े-खड़े ही अपनी पूरी स्थिति के विषय में उन्हें बता दिया। फिर कहा, 'ऐसी स्थिति में उन्हें लेने के लिए मैं कैसे जाऊँ ?'

सुनकर वह थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर बोले, 'अच्छा, यह अक डिस्पैच करके तुम दो दिन के लिए चले जाओ। लेकिन, भाई, देर मत करना। मैं किसी तरह आने-जाने के लिए तुम्हारे खर्च का बंदोबस्त करता हूँ।' और उठकर मेरी पीठ ठोकते हुए कहा, 'जाओ, अब काम करो।'

यह सब कुछ अनहोनी-सा हुआ था। मेरी खुशी का ठिकाना न था। कृतज्ञताभरी आँखों से उनकी ओर देखते हुए मैंने कहा, 'बाबूजी, अनुवाद के लिए तीन-चार कहानियाँ मुझे और दे दें।'

'अच्छा-अच्छा, शाम को ले लेना', कहकर वे अपने काम में लग गये।

लेकिन मुझे जाना न पड़ा। तीसरे दिन अभी थोड़ी रात बाकी ही थी कि नीचे से पुकार सुनायी दी। कोई मेरा नाम ले-लेकर पुकार रहा था। उठकर नीचे गया तो क्या देखता हूँ कि मेरे ससुरजी के पीछे मेरी पत्नी, अपनी गोद में बच्चा लिए, खड़ी है। मैंने झुककर ससुरजी के पाँव छुए। बोला, 'आइये, शनिवार तक तो मैं ही पहुँचने वाला था।'

'यही नहीं मानी, भाई', वह बोले, 'हमने तो बहुत समझाया''' यह

बिस्तर तुम उठा लो, मैं सूटकेस और टोकरी उठा लेता हूं।'
मियानी मे आकर अभी खड़े ही थे कि ससुरजी बोले, 'बेटी, ज
मुन्ने को मुझे दो। मेरी एक गाडी साढे सात बजे जाती है। अभी चल प
तो मिल जायेगी।'
उनकी गोद मे मुन्ने को देते हुए प्रेमा सिर झुकाये हुए धी मेस्वर में
बोली, आज रुकिये, बाबूजी। कल जाइयेगा।'
मुन्ने को चूमते हुए ससुरजी बोले, 'बिना छुट्टी लिए चला आया हूं।
तुम लोग चिट्ठी लिखते रहना।' और उन्होने मुन्ने को प्रेमा की गोद मे
वापस कर दिया।
प्रेमा ने मुन्ने को बाबूजी के चरणो मे छुलाकर मुझे दिया और खुद
उनके पांव छूने को झुक गयी।
ससुरजी ने जेब से दस रुपये का एक नोट निकालकर मेरी गोद मे
पडे मुन्ने के हाथो मे घुसेडा और चल पडे। प्रेमा ने मुन्ने को मेरी गोद से
लेकर कहा, जाइये, बाबूजी को छोड आइये।'
मैं हतबुद्धि की तरह ससुरजी के पीछे-पीछे सीढियां उतरने लगा।
नीचे रुककर ससुरजी बोले, 'तुम जाओ उनके पास, मैं चला जाऊंगा।
प्रेमा को अभी कुछ दिन और अपनी मां के पास रहना चाहिए था। लेकिन
यह जिद पर उतर आयी तो हम क्या करते? दस-पांच दिन के बाद, न हो,
उसे पहुंचा देना। अभी इसे सेवा की जरूरत है। तुम समझा-बुझा देना।'
मेरे कधे पर हाथ रखकर वह आगे बोले, 'अपने मां-बाप से अलग होकर
ऐसा न समझना कि तुम बे-मां-बाप के हो। जब तक हम जिंदा हैं, हमारा
घर तुम लोगो के लिए हमेशा खुला रहेगा···अच्छा, अब तुम ऊपर जाओ।'
मेरे कधे से अपना हाथ हटाकर वह मुडे तो मैंने झुककर उनके पांव
पकड़ लिए।
मुझे उठाते हुए उन्होने आशीर्वाद दिये और जेब से दो दस-दस रुपये के
नोट निकालकर मेरे हाथ मे ठूंसते हुए बोले, 'अपने लिए कपडे बनव
लेना। जल्दी मे हम कुछ न कर सके।'
सडक पर वे जा रहे थे। मैं काफी देर तक उनकी ओर देखता रहा
मियानी मे बच्चे को बेठन पर लिटाकर प्रेमा उसकी बगल मे

81

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)
सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

झुकाये हुए बैठी थी, दरवाजे पर आहट पाकर उसने सिर उठाकर मुझे देखा और बोली, 'इतनी जल्दी आ गये, बाबूजी को छोड़ने स्टेशन नही गये क्या ?'

उसके पास बैठते हुए मैंने कहा, 'उन्होने ही नीचे से लौटा दिया ।'

उसके बाद उसने फिर घुटनों मे सिर डाल लिया और जोर-जोर से साँसे लेने लगी । मैं बच्चे के सिर पर हाथ फेरता रहा । मैं क्या बोलूँ, मेरी समझ मे न आ रहा था ।

काफी देर बाद वह घुटनो मे सिर डाले हुए ही बोली, 'बिस्तर खोलकर लेट क्यो नही जाते ? अभी तो रात बाकी है ।'

मैने बिस्तर खोलकर फैलाया और बच्चे को उस पर लिटाकर कहा, 'आओ लेटो ।'

'आप लेटिये', वह बोली ।

'मुझे कुछ काम करना है ।'

'कुछ लिख रहे थे क्या ? यहाँ कागज-कलम-दवात पड़े हुए थे ।'

'हाँ, एक नया काम शुरू किया है ।'

'रात मे करते है ?'

'हाँ ।'

'तो सोते कब है ? आपने लिखा था, सुबह से लेकर रात के नौ बजे तक काम करते हैं ।'

'तीन रातों से घड़ी-दो-घड़ी ही सोया हूँ । आज की कहानी लम्बी है, अभी चार पृष्ठों का अनुवाद बाकी है, इसे आज पूरा करना था । कल शाम को मैं रवाना होने वाला था । तुम्हें मेरा इंतजार करना चाहिए था । बाबूजी कहते थे, तुम मानी हो नही ।'

'आप आयेंगे, मुझे विश्वास ही नही हो रहा था ।'

'बाबूजी कहते थे, तुम्हें अभी कुछ दिन और माँ के पास रहना चाहिए था । तुम्हे अभी सेवा की जरूरत है ।'

'आपको मेरी सेवा की जरूरत नही है ?'

'नही ! मै तो ठीक-ठाक हूँ ।'

'हूँ ।'

'कितनी दुबली हो गयी हो तुम ।'

'और आप ? आपकी हालत तो मुझसे देखी नही जाती । इतना काम आप क्यो करते हैं, जबकि वह इतना कम पैसा देता है और वह भी हीज-हगा कर देता है ।'

'मजबूरी है···लेकिन इस नये काम से कुछ और आमदनी की उम्मीद है । बीस-पच्चीस माहवार तो यही से और मिलेंगे ।'

'दिन-रात काम कैसे करेंगे ? इस तरह भी क्या दुनिया मे कोई काम करता है ? आपकी तदुरुस्ती यो ही बहुत गिरी हुई है ।'

'न करने से कैसे चलेगा ?' मैं बोला, 'बाबूजी कहते थे, दस-पाँच दिन मे उन्हे पहुँचा देना । मेरी भी राय है···'

'ऐसा मत कहिये ।' वह बोली, 'आपको छोड़कर मैं नही रह सकती । आप यहाँ दुख उठाये और मैं वहाँ आराम से रहूँ, यह नही हो सकता । इतने दिन मैंने कैसे काटे हैं, आपको नही बता सकती । आपकी आखिरी चिट्ठी पढकर तो मुझे हौल-सा हो गया । बाप रे बाप ! आप इतनी तकलीफ उठाते रहे और···'

'प्रेमा, जैसा समय देखा जाता है, वैसा किया जाता है', मैं बोला, 'अब लगता है कि हालत सुधरेगी । मुझे इस नये काम से बडी उम्मीदें हैं ।'

'जो हो, मैं आपके साथ ही रहूँगी', वह बोली, 'दुख से कटे या सुख से, आपको देखती रहूँगी तो मुझे संतोष रहेगा ।'

मैंने समझ लिया, प्रेमा से कुछ और कहना बेकार है । हम साथ-साथ रहने लगे । मेरे कामो मे कोई कमी नही आ सकती थी । सुबह चाय-रोटी लेकर मैं मालिक के घर चला जाता । शाम को भी ऐसा ही होता । हमारा साथ रात के चंद घंटो के लिए ही होता था । वह सो जाती और मैं अनुवाद का काम करता । लेकिन शिकायत का एक लफ्ज भी उसके होंठो पर कभी न आता । जब भी मैं आता, वह मुसकराकर मेरा स्वागत करती ।

मौलिक कहानियो और अनुवादो को लेकर मुझे जो उम्मीदें थी, वे पूरी हो जाती, तो शायद हमारे दिन अच्छी तरह कटते रहते । लेकिन ऐसा हुआ नही । बहुत सारी कहानियाँ तो वापस आ गयी । एक-दो छपी भी तो मे बार-बार के तकाजो के बावजूद एक पैसा भी न आया ।

हताश होकर एक दिन मैंने मालिक को यह बात बतायी तो वे मुस्कराकर बोले, 'भाई मैं जानता था कि ऐसा ही होगा। मैंने तुम्हारे अनुवाद पर अपना नाम दिया था, तो तुम्हें बुरा लगा था। अब तुम समझ ही सकते हो कि मैं पाँच रुपया की कहानी तुम्हें देता हूँ, तो तुम्हे अपना ही समझकर देता हूँ। और अब तो मैं यह सोच रहा हूँ कि अनुवाद छापना बंद कर दूँ। कई महीने छपते हुए हो गये, कोई खास फायदा न हुआ।' कहकर उन्होंने मेरी ओर देखा।

मेरी तो जैसे जान ही निकल गयी। मेरे पाँव ऐसे थरथरा उठे कि उन्हें सँभालना मुश्किल हो गया। मेरा सूखा हुआ मुँह देखकर ही वे बोले 'तुम घबराओ नहीं, भाई मैं तुम्हारे लिए कुछ और सोच रहा हूँ। तुम बाल-बच्चेदार आदमी हो, तुम्हारे लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। शाम तक सोचकर मैं तुम्हें बताऊँगा।'

मेरा वह पूरा दिन बड़ी बुरी तरह कटा। रह-रहकर चिंता से मेरा माथा फटने लगता। समझ में ही न आता कि अब क्या होगा। जो पैसा मुझे मिल रहा था, उससे बड़ी मुश्किल से रोटी-दाल चल रही थी। बच्चे को पूरा दूध दे पाना भी मुश्किल था। दूध खत्म हो जाता था, तो हम उसे दाल का पानी पिलाते, दाल के पानी मे भात पीसकर चम्मच-चम्मच खिलाते। प्रेमा का दूध सूख गया था। शायद वह फिर माँ बनने वाली थी। इस बीच फिर कई बार मैंने उससे मायके जाने को कहा था। लेकिन वह राजी ही नही होती थी। कहती थी, 'ऐसा मत कहिये! आपके बिना मैं नही रह सकती।'

शाम को कार्यालय बंद होने का समय हुआ, तो मैं जाकर मालिक की मेज के सामने खड़ा हो गया। उन्होंने सिर उठाकर मेरी ओर देखा, फिर कुर्सी की पीठ पर टेक लगाकर कहा, 'हाँ, भाई, मैंने तुम्हारे लिए दो-तीन काम सोचे है। एक तो यह कि तुम कुछ विदेशी कहानियों का भारतीयकरण करो। यह काम कोई उतना मुश्किल नही है। पात्रों और जगहों के नाम हिंदुस्तानी कर देने होंगे और थोड़ा बहुत इधर-उधर बदल देना होगा। शुरू में किसी कहानी को पढकर मैं तुम्हें समझा दूँगा कि कैसे करना होगा। कोई चिंता की बात नही है। मैं जानता हूँ, तुम बहुत अच्छी तरह कर

लोगे···और दूसरा काम यह है कि रविवार के दिन तुम चौक में या सिविल लाइन में या कटरा में घूम-घूमकर साप्ताहिक बेचो या घरों में जाकर इसके वार्षिक या छमाही या तिमाही ग्राहक बनाओ। मैं तुम्हें पच्चीस फीसदी कमीशन दूंगा। बीस कापी भी तुम बेच लोगे तो तुम्हारे सवा रुपये खड़े हो जायेंगे। एक भी वार्षिक ग्राहक तुम बना लोगे तो तुम्हारे ढाई रुपये बन जायेंगे। भाई, यह तुम्हारे करने पर है। जितना तुम करोगे उतना ही तुम्हें फायदा होगा। और तीसरा काम यह है—क्यों भाई, तुम्हारी पत्नी कोई काम कर सकती है?' कहकर उन्होंने मेरी ओर देखा और मेरे कुछ कहने के पहले ही बोले, 'देखो इसमें शर्म की कोई बात नहीं है। बात यह है कि मेरे घर में आजकल कुछ तबीयत खराब चल रही है। उनकी थोड़ी मदद करनी है। हमारे घर में तो जगह नहीं है, लेकिन खोज-पूछकर कोई कमरा पास ही में तुम लोगों को सस्ते में दिला दूंगा। तुमको दो-दो बार आने-जाने से भी छुट्टी मिल जायेगी और साथ ही पांच-सात रुपये और भी मिल जायेंगे। बोलो, अब तुम क्या कहते हो? देखो, भाई, अपनी ओर से मैं जो कर सकता हूं, मैंने तुम्हारे सामने रख दिया है। अब यह तुम्हीं पर मुनहसर करता है कि तुम क्या करते हो।'

'कोई कहानी दे दीजियेगा', मैंने कहा।

'कहानी तुम्हें कल दूंगा। आज रात को पढ़कर चुनूंगा। और बोलो?'

'रविवार को साप्ताहिक बेचूंगा।'

'जरूर बेचो। तुम मेहनत से काम करोगे तो इसमें जरूर तुम्हें फायदा होगा। और बोलो?'

'मेरे घर में भी आजकल तबीयत कुछ ठीक नहीं चल रही है।'

'क्यों? क्या हुआ उन्हें? तुमने तो मुझे कुछ बताया नहीं?'

'औरतों की बात है। मुझे भी अभी कुछ ठीक-ठीक मालूम नहीं है।'

'ओह!' वे बोले, 'भाई, तुमने जरा जल्दी कर दी मालूम होता है, खै[र] कोई बात नहीं है। मैंने बात चलायी है तो इसका मतलब यह नहीं है [कि] कल ही से सब हो जाये। उनकी तबीयत थिरा जाने दो, अगले महीने [से] सही। पांच-सात महीने तो काम कर ही सकती हैं। चाहो तो तुम उ[नकी] भी राय ले लो भाई, अपना ही घर है। किसी गैर के यहाँ तो काम

जाना नही है। वह भी वक्त पड़ गया है तो कहता है।'

कहकर उन्होंने कलाई घुमाकर घडी देखी। फिर उठते हुए बोले, 'चलो, अब चला जाये। ऑफिस बंद करो।'

उस रात मुझे कोई काम न करना था। फिर भी मुझे रात-भर नींद न आयी। लगता था कि एक बड़ी ही विकट समस्या सामने आ खडी हुई है। उसका एक ही हल है कि प्रेमा मालिक के यहाँ काम करे। लेकिन मेरा मन इस बात को सोचने के लिए भी तैयार न था। पाँच-सात रुपये के लिए प्रेमा को किसी के यहाँ काम करना पड़े, मेरे लिए तो शर्म की बात थी ही, साथ ही प्रेमा की भी कोई मामूली तौहीनी न थी। मुझे अपनी शर्म की कोई चिंता न थी, मैं सब-कुछ करने को तैयार था, लेकिन प्रेमा भी इसी चक्की में पिसने लगे, यह मैं कैसे स्वीकार कर सकता था? बेचारी जब से यहाँ आयी थी, कोई सुख उसे न मिला था। फिर भी कभी मुँह उदास न किया था। मेरे साथ रहना ही जैसे उसकी लालसा की सबसे बडी चीज हो। मेरे साथ रहकर भूखो मर जाना उसे स्वीकार था। मुझसे अलग होकर वह अपने जीवन की कोई कल्पना ही न कर सकती थी। जो होता था, जबर्दस्ती पहले मुझे खिलाकर जो बचता था, खुद खाती थी। जाने कितना बचता था, मुझे देखने का कभी अवसर न देती थी। कहती थी, दिन-रात खटते हैं, यह रूखी-सूखी भी भरपेट न खायेंगे, तो देह कैसे कायम रहेगी? मैं तो दिन-भर पडी रहती हूँ, किसी दिन खाना कुछ कम भी हो जाये तो क्या बिगड़ता है? इस बात को लेकर प्रेमा से कितनी बार झगड़ने की मैंने कोशिश की थी। लेकिन वह बात बढने ही न देती थी, अपनी मधुर, निश्छल हँसी में सब-कुछ बहा देती थी। कहा करती थी, जिस रगडे-झगड़े से परेशान होकर हमने घर छोडा था, उसी रगडे-झगडे में हम भी पड गये तो लोग क्या कहेंगे? खाना-पीना तो जिंदगी-भर है। कभी कम ही मिले तो क्या बिगड़ता है? हाँ, हमारे प्रेम में कभी कमी न आनी चाहिए। प्रेम का रूखा-सूखा भी अमृत-तुल्य है।

प्रेमा जो कुछ कहती थी, मेरे दिल को छू जाता था और मुझे लगता था कि उसकी बात ठीक ही है। मैं रात-दिन चिंता में घुलता रहता था। लेकिन देखता था कि जैसे प्रेमा को कोई दुख ही न हो। कभी भी अपने

लोगे। और दूसरा काम यह है कि रविवार के दिन तुम चौक में या सिविल लाइन्स में या बाज़ार में घूम-घूमकर साप्ताहिक बेचो या घरों में जाकर इसके वार्षिक या छमाही या तिमाही ग्राहक बनाओ। मैं तुम्हें पच्चीस फीसदी कमीशन दूंगा। और कापी भी तुम बेच लोगे तो तुम्हारे दस पैसे बढ़े तो जायेंगे। एक भी वार्षिक ग्राहक तुम बना लोगे तो तुम्हारे ढाई रुपये बन जायेंगे। भाई, यह तुम्हारे करने पर है। जितना तुम करोगे उतना ही तुम्हें फायदा होगा। और तीसरा काम यह है—क्यों भाई, तुम्हारी पत्नी कोई काम कर सकती है?' कहकर उन्होंने मेरी ओर देखा और मेरे कुछ कहने के पहले ही बोले, 'देखो इसमें शर्म की कोई बात नहीं है। बात यह है कि मेरे घर में आजकल कुछ तबीयत खराब चल रही है। उनकी थोड़ी मदद करनी है। हमारे घर में तो जगह नहीं है, लेकिन खोज-पूछकर कोई कमरा पास ही में तुम लोगों को रहने में दिला दूंगा। तुमको दो-दो बार आने-जाने से भी छुट्टी मिल जायेगी और साथ ही पांच-सात रुपये और भी मिल जायेंगे। बोलो अब तुम क्या कहते हो? देखो, भाई, अपनी ओर से मैं जो कर सकता हूं, मैंने तुम्हारे सामने रख दिया है। अब यह तुम्हीं पर मुनहसर करता है कि तुम क्या करते हो।'

'कोई कहानी दे दीजियेगा' मैंने कहा।

'कहानी तुम्हें कल दूंगा। आज रात को पढ़कर चुनूंगा। और बोलो?'

'रविवार को साप्ताहिक बेचूंगा।'

'जरूर बेचो। तुम मेहनत से काम करोगे तो इसमें जरूर तुम्हें फायदा होगा। और बोलो?'

'मेरे घर में भी आजकल तबीयत कुछ ठीक नहीं चल रही है।'

'क्यों? क्या हुआ उन्हें? तुमने तो मुझे कुछ बताया नहीं?'

'औरतों की बात है। मुझे भी अभी कुछ ठीक-ठीक मालूम नहीं है।'

'ओह!' वे बोले, 'भाई, तुमने जरा जल्दी कर दी मालूम होता है, ख़ैर, कोई बात नहीं है। मैंने बात चलायी है तो इसका मतलब यह नहीं है कि कल ही से सब हो जाय। उनकी तबीयत थिरा जाने दो, अगले महीने से सही। पांच-सात महीने तो काम कर ही सकती हैं। चाहो तो तुम उनकी भी राय ले लो भाई, अपना ही घर है। किसी गैर के यहां तो काम करने

अरथान (कविता संग्रह : 1984)

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

जाना नहीं है। वह भी वक्त पड़ गया है तो कहता है।'

कहकर उन्होंने कलाई घुमाकर घड़ी देखी। फिर उठते हुए बोले, 'चलो, अब चला जाये। ऑफिस बंद करो।'

उस रात मुझे कोई काम न करना था। फिर भी मुझे रात-भर नींद न आयी। लगता था कि एक बड़ी ही विकट समस्या सामने आ खड़ी हुई है। उसका एक ही हल है कि प्रेमा मालिक के यहाँ काम करे। लेकिन मेरा मन इस बात को सोचने के लिए भी तैयार न था। पाँच-सात रुपये के लिए प्रेमा को किसी के यहाँ काम करना पड़े, मेरे लिए तो शर्म की बात थी ही, साथ ही प्रेमा की भी कोई मामूली तौहीनी न थी। मुझे अपनी शर्म की कोई चिंता न थी, मैं सब-कुछ करने को तैयार था, लेकिन प्रेमा भी इसी चक्की में पिसने लगे, यह मैं कैसे स्वीकार कर सकता था? बेचारी जब से यहाँ आयी थी, कोई सुख उसे न मिला था। फिर भी कभी मुँह उदास न किया था। मेरे साथ रहना ही जैसे उसकी लालसा की सबसे बड़ी चीज हो। मेरे साथ रहकर भूखों मर जाना उसे स्वीकार था। मुझसे अलग होकर वह अपने जीवन की कोई कल्पना ही न कर सकती थी। जो होता था, जबर्दस्ती पहले मुझे खिलाकर जो बचता था, खुद खाती थी। जाने कितना बचता था, मुझे देखने का कभी अवसर न देती थी। कहती थी, दिन-रात खटते हैं, यह रूखी-सूखी भी भरपेट न खायेंगे, तो देह कैसे कायम रहेगी? मैं तो दिन-भर पड़ी रहती हूँ, किसी दिन खाना कुछ कम भी हो जाये तो क्या बिगड़ता है? इस बात को लेकर प्रेमा से कितनी बार झगड़ने की मैंने कोशिश की थी। लेकिन वह बात बढ़ने ही न देती थी, अपनी मधुर, निश्छल हँसी में सब-कुछ बहा देती थी। कहा करती थी, जिस रगड़े-झगड़े से परेशान होकर हमने घर छोड़ा था, उसी रगड़े-झगड़े में हम भी पड़ गये तो लोग क्या कहेंगे? खाना-पीना तो जिंदगी-भर है। कभी कम ही मिले तो क्या बिगड़ता है? हाँ, हमारे प्रेम में कभी कमी न आनी चाहिए। प्रेम का रूखा-सूखा भी अमृत-तुल्य है।

प्रेमा जो कुछ कहती थी, मेरे दिल को छू जाता था और मुझे लगता था कि उसकी बात ठीक ही है। मैं रात-दिन चिंता में घुलता रहता था। लेकिन देखता था कि जैसे प्रेमा को कोई दुख ही न हो। कभी भी अपने

मुंह से उसने न एक शिकायत की और न एक बात मांगी। जब भी मैं देखता था उसे प्रसन्न पाता था। रात को जब मैं लिखने बैठ जाता था, तो लेटी-लेटी वह देर तक मद्धिम स्वर में कोई लोकगीत गाती रहती थी। उसका स्वर बड़ा ही कोमल और मधुर था और बड़े ही गहरे एहसास के साथ वह प्रेम के लोकगीत गाती थी। कितनी ही बार मेरी कलम रुक जाती थी। मैं मुग्ध होकर उसका गाना सुनने लगता था। मुझे लगता था कि गाते समय वह गीत के साथ एकात्म हो जाती थी।

कभी-कभी प्रेमा के बारे में सोचते हुए मैं बड़ी उलझन में पड़ जाता था। प्रेम ही उसका जीवन था। मैं उसकी इस भावना की कद्र किये बिना न रह सकता था, किंतु मेरी समझ में न आता था कि केवल प्रेम से आदमी कैसे जीवित रह सकता है? कभी मैं यह भी सोचता था कि अगर प्रेमा की ही तरह मैं भी हो जाऊँ तो उसका परिणाम क्या होगा? और मैं रो पड़ता था। प्रेमा के लिए मेरे मन में दया उमड़ पड़ती थी। मुझे लगता था कि यह लड़की इस संसार के लिए नहीं है, यह जल्दी ही यह संसार छोड़ देगी और शायद मुझे और बच्चे को भी अपने साथ ले जायेगी। मैं इस स्थिति के लिए तैयार न था, लेकिन प्रेमा के आगे मैं विवश था।

क्या करता, अपने को स्थिति के हवाले कर दिया। और मैं कर ही क्या सकता था?

मुझे जो डर था, आखिर वही हुआ। मालिक एक-न-एक बहाना करके मुझे कहानी देना टालते गये। रोज मेरे माँगने पर बहाना करके वे कल पर टाल देते और पूछते, 'तुम्हारी पत्नी का अब क्या हाल है? कुछ तय किया?'

मैं कह देता, 'अभी हाल ठीक नहीं है, क्या करूँ?'

रविवार को दोपहर का खाना खाकर मैं निकल जाता। लेकिन घंटों चक्कर लगाने पर भी चार-पाँच प्रतियों से अधिक न बेच पाता।

आखिर वह घड़ी आ गयी, जब जीने के लिए हमारे पास केवल प्रेम रह गया। एक दिन एक जून खाना बना, दूसरे दिन चाय-रोटी बनी! तीसरे दिन सिर्फ चाय रह गयी और चौथे दिन·· चौथे दिन हलवाई ने

: 1981)

अरघान (कविता संग्रह : 1984)

गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

दूध उधार देने से मना कर दिया। हम तो खामोश थे लेकिन बच्चा बिल-बिला उठा।

महीना खत्म होने मे अभी चार दिन थे। मालिक पर मेरा कुछ भी पावना न था। कई बार मन में आया कि उनसे कुछ अगाऊ माँगूं, लेकिन साहस न हुआ, न मन हुआ। इधर उनसे बात करना भी मैंने बंद कर दिया था। बात करना बेकार ही था, क्योंकि कोई भी बात शुरू होकर मेरी पत्नी पर ही जाकर टूटती थी। एक बात और थी और वही शायद सर्वोपरि थी। मैं भी जब जिद पर ही आ गया था। देखना चाहता था कि केवल प्रेम से ही प्रेमा कैसे जीती है!

अगले दिन मैं लस्त होकर पड गया। न मालिक के घर गया और न नीचे दफ्तर मे ही गया। चलना दूर, खड़े होना मुश्किल था।

मेरा नाम पुकारते हुए मालिक मियानी के दरवाजे पर आ खडे हुए। बोले, 'क्या बात है? आज न तुम घर आये और न दफ्तर ही आये?'

प्रेमा ने घूंघट कर लिया। मैं बोला, 'तबीयत ठीक नही है।'

वे अदर आकर बोले, 'क्या हुआ? तुम जानते हो, आज डिस्पैच का दिन है। चलो, नीचे तो चलो।'

'मुझसे तो उठा भी नही जाता', मैंने कहा।

वे झुककर मेरे हाथ छूकर बोले, 'बुखार तो नही है। थकान-वकान शायद हो। लेकिन तुम नीचे तो चलो।'

कैसे चलूं जब मुझसे उठा ही नही जाता?'

'उठो, मैं तुम्हे सहारा देता हूँ', मेरा हाथ पकड़कर वे बोले, 'यों पडे रहने से कैसे काम चलेगा? डॉक्टर को दिखाना होगा तो भी तो नीचे तक चलना ही होगा।'

मेरे पाँवों मे दम नही था। फिर भी उनका सहारा लेकर मैं उठा और उन पर झुका हुआ किसी तरह चलकर नीचे आया।

फर्श पर बैठ गया तो वे बोले, 'क्या बात है? तुमने कुछ खाया-पिया है कि नही? तुम्हारे यहाँ चूल्हा बुझा हुआ था।'

मेरे आँसू यकबयक उमड आये। मैं फूट-फूटकर रोने लगा।

वे बोले, 'मेरी बात तुमने नही मानी। खैर, आज तो डिस्पैच का दिन

है। डिस्पैच के लिए भी शायद मेरे पास पूरे पैसे नहीं हैं। बस मैं तुम्हें कुछ पेशगी दूँगा किसी तरह। यह अठन्नी लो, जाकर कुछ खा आओ··· रुको, मैं ही बगल के होटल में बोल जाता हूँ।'

'पत्नी भी भूखी है, बच्चे को भी दूध नहीं मिला। अकेले मैं कुछ कैसे खाऊँगा?'

'ओह!' वे बोले, 'लेकिन मेरे पास तो और पैसे नहीं हैं, डिस्पैच कैसे चलेगा?···खैर, कुछ खाकर तुम काम तो शुरू करो। उनके लिए भी मैं देखता हूँ। यही सब सोचकर तो मैंने तुमसे कहा था। हमारे घर के पास होते तो घर ही से कुछ मिल जाता।'

कहकर वे बाहर जाने लगे तो मैंने कहा, 'अकेले मैं कुछ नहीं खाऊँगा।'

'नहीं खाओगे तो मरो।' मालिक नाराज होकर बोले, 'मैंने किसी का जिम्मा नहीं लिया है। पूरी तनख्वाह मैं दे चुका हूँ। तुम समझते हो कि तुम्हारे बिना मेरा कोई काम रुक जायगा? तुम यहीं बैठे रहो और देखो कि कैसे डिस्पैच होता है। बीबी कोई काम नहीं करेगी! बड़े आये हैं कहीं के नवाब साहब। पलंग पर बैठकर बीबी को खाना खिलायेंगे!' कहकर वे अपनी मेज पर जा बैठे। मेरे आँसू अचानक सूख गये। अस्तित्वहीन-सा होकर मैंने माथा झुका दिया।

प्रेमा शायद सीढ़ियों पर खड़ी हमारी बातें सुन रही थी। वह अचानक ही दफ्तर में प्रकट हुई और मेरी बाँह पकड़कर मुझे उठाती हुई बोली, 'चलिये, आप ऊपर चलिये।'

मैं उठकर उसके सहारे चलने लगा तो मालिक बोले, 'यह मियानी तुम्हारे बाप की नहीं है। कल तक खाली कर दो।'

ऊपर आकर हम खामोश बैठे रहे। बच्चा आँख मूँदे बेहाल पड़ा था। उसका पेट देखने से ही पता चलता था कि साँस चल रही है।

काफी देर बाद प्रेमा बोली, 'मेरे ही कारण आपको इतनी तकलीफ उठानी पड़ रही है।'

'नहीं, मेरे कारण तुम लोगों को तकलीफ उठानी पड़ रही है।' मैं बोला, 'ऐसा ही नालायक हूँ मैं। अब फुटपाथ पर पड़कर मरने के सिवा हम कुछ भी नहीं कर सकते।'

ह : 1981)

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)

सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

'ऐसा न कहिये।'

'तो बताओ, हम और क्या कर सकते हैं ?'

'मैं क्या जानती हूँ', वह बोली।

'इस हालत में हम कही जा भी तो नही सकते···'

'क्यो नही जा सकते ?' अचानक मालिक की आवाज सुनायी दी।

सिर उठाकर देखा, तो वह दरवाजे पर खड़े थे। अदर आते हुए बोले, 'इतनी बड़ी दुनिया है, तुम कही भी जा सकते हो। लेकिन ये क्या करेंगे ?'

मैंने सिर झुका लिया। मालिक ही फिर बोले, 'मुझे खूब गाली देते होंगे मन-ही-मन मे। लेकिन मैं शैतान नही हूँ। मुझे गुस्सा आता है तुम्हारी बेवकूफी पर।' वे प्रेमा की ओर मुखातिब हुए, 'देखिये जी, हमारे घर मे आजकल तबीयत ठीक नही है। इससे मैंने कहा था कि थोड़े दिनो के लिए हमारी मदद के लिए अपनी पत्नी को भेज दो। आप ही बताइये, मैंने कौन-सी बुरी बात कही थी ? जरूरत पड़ने पर मदद के लिए अपनो से न कहा जायेगा, तो किससे कहा जायेगा ? बताइये मैं कोई गलत बात कहता हूँ ?'

घूँघट की ओट मे प्रेमा खामोश रही।

'यह तो आपसी लेन-देन है', मालिक बोले, 'जरूरत पर कोई हमारी मदद करेगा, तभी तो जरूरत पर हम उसकी मदद करेंगे। यह मामूली-सी बात भी इसकी समझ मे नही आ रही है। आप से इसने कुछ कहा था ?'

प्रेमा कुछ न बोली तो वही बोले, 'इसने नही कहा होगा, मैं जानता हूँ। कहा होता तो आप हर्गिज इन्कार न करती। न यह नौबत ही आती।'

'कहाँ रखे, साहब ?' कोई दूसरी आवाज सुनकर मैंने सिर उठाया तो देखा, दरवाजे पर हाथो मे ट्रे लिए होटल का लड़का खड़ा था।

'अदर आकर यहाँ रख दो।'

लड़का ट्रे रखकर चला गया तो मालिक प्रेमा से बोले, 'जाने कब से आपके यहाँ चूल्हा नही जल रहा है, लेकिन इस कम्बख्त ने मुझसे एक बार कहा तक नही। अपनी इसे फिक्र न हो तो न हो, लेकिन अपनी बीवी की तो फिक्र होनी ही चाहिए, इस अबोध बच्चे की तो फिक्र होनी चाहिए। इस पर मुझे गुस्सा न आये तो क्या आये ? खैर, लीजिये, आप बच्चे को दूध पिलाइये, इसे खाना खिलाइये और आप भी खाइये।'

कहकर वे चले गये।

अभी जो कुछ घट गया था, उस पर आश्चर्य ही किया जा सकता था।
लेकिन हम भूखों के बीच वह है ज्यों-की-त्यों पड़ी रही, यह भी कोई छोटा
आश्चर्य न था। मेरे सोचने के लिए न तो कोई बात ही थी और न दिमाग
ही कुछ सोचने लायक था। प्रेमा की क्या स्थिति थी, मुझे नहीं मालूम।
थोड़ी देर के बाद प्रेमा ने बच्चे को उठाकर अपनी गोद में लिया तो
वह चिड़िया की तरह चें-चें करके रो उठा। प्रेमा ने मुझसे पूछा, 'बच्चे को
दूध पिलाऊं ?'
सहसा मेरे मुंह से कोई शब्द न निकला। लेकिन फिर तुरन्त ही मैंने कह
दिया 'पिलाओ।'
चम्मच से दूध लेकर प्रेमा ने बच्चे के स्याह पड़े होंठों पर रखा तो वह
चिहुंक उठा। फिर आंखें खोलकर उसने जीभ निकाली और दोनों हाथों से
प्रेमा का हाथ पकड़कर चम्मच अपने मुंह पर दबाकर दूध पीने लगा। दूध
खत्म हो जाने पर प्रेमा चम्मच हटाने लगी, तो बच्चा कें करके रो पड़ा। वह
प्रेमा का हाथ छोड़ ही न रहा था। जोर लगाकर प्रेमा ने हाथ छुड़ाया तो
वह और भी जोर से रोने लगा। लेकिन दूध-भरा चम्मच उसके होंठों से
फिर जा लगा तो उसने सहसा चुप होकर फिर प्रेमा का हाथ पकड़कर
चम्मच अपने मुंह पर दबा लिया।
भूख और खाने के बीच के सीधे संबंध का यह एक हृदय-विदारक दृश्य
था। मैं सोचने लगा कि एक बिंदु पर जाकर शायद मेरी भी मनोदशा इस
बच्चे की ही तरह हो जायेगी। लेकिन तब भी प्रेमा के बारे में ऐसा सोच
पाना मेरे लिए कठिन था। प्रेमा शायद कभी भी ऐसे बिंदु पर न पहुंचे,
ऐसा लगता था।
पूरे गिलास का दूध पीकर बच्चा सुस्त पड़ गया। उसने आंखें मूंद ली
और हाथ-पांव छोड़ दिये। प्रेमा ने उसका मुंह पोंछकर उसे बगल में लिटा
दिया। फिर बोली, 'आइये, अब आप भी खा लीजिये।'
प्रेमा के स्वर में कोई उतार न था। अपना बनाया हुआ खाना खाने के

I ग्रह : 1981

मरघान (कविता संग्रह : 1984)

सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

लिए भी वह इसी तरह कहती थी। मैंने उसकी ओर एक बार देखा। नहीं, उसके चेहरे पर, आँखों में भी कोई दूसरा भाव न था।

मैंने कहा, 'इस खाने का मतलब समझती हो ?'

'मैं क्या जानूं', वह बोली, 'आप नीचे अकेले कुछ खाने को तैयार न हुए, अब आपके मालिक ने हम सबके लिए खाना पहुँचवा दिया है। यही तो आप चाहते थे। आइये, खाइये।'

'प्रेमा, तुम उनके घर काम करोगी ?'

'आप कहेंगे तो क्यों न करूँगी ? आप इतना काम करते हैं, मैं तो कुछ भी नही करती।'

'मेरा मन तो नही मानता कि तुम उनके यहाँ काम करो।'

प्रेमा कुछ न बोली तो मैं ही बोला, 'प्रेमा, तुम कुछ दिन और अपने मायके नही रह सकती ?'

'आप नही मानेंगे तो क्यों न रहूँगी ? आप जहाँ कहेंगे वहीं रहूँगी, आप जो कहेंगे वही करूँगी। आइये, खाना तो खा लीजिये।'

मैं सोचने लगा कि क्या कहूँ। लेकिन उन्होंने सोचकर कुछ कह देने की बात यह नहीं लगी। इतना ज़रूर था कि यह खाना आने के पहले की स्थिति बिलकुल बेकाबू हो गयी थी अब वह वैसी न लगती थी। लगता था कि अब समाधान सामने आ गया है। उसे स्वीकार कर लेने की ही बात है और यह पूर्णतः मुझ पर ही अवलंबित है।

'सोचने की तो कोई बात ही नही है।' प्रेमा बोली, 'आइये, खा लीजिये, खाना ठंडा हो रहा है।'

मैंने प्रेमा की ओर देखा, वह मेरी ओर देख रही थी और मुस्करा रही थी। आश्चर्य है उसकी इस मुस्कराहट में भी कोई अंतर न था, उसमें पहले की ही तरह प्रेमपूर्ण निमन्त्रण था।

आगे मैं कुछ न बोल सका। चुपचाप बैठ गया और खाने लगा। बाद में खाना उठाकर प्रेमा दरवाजे के बाहर चली गयी।

थोड़ी देर के बाद सीढ़ियों पर से ही लड़की की आवाज सुनाई दी, 'बर्तन खाली हो गये ?'

प्रेमा ने कहा, 'हाँ, ले आओ।'

थोड़ी देर के बाद मालिक की आवाज सुनायी दी, 'खा चुके भाई, तुम लोग? मनोहर, तुम नीचे चलो, बाहर से यहाँ मैंने एक आदमी बुला लिया है। तुम बैठे-बैठे जरा मदद कर दो। काम बहुत कम है।'

मैं उठा और उनके पीछे-पीछे नीचे चला आया।

काम करता रहा और सोचता रहा। आखिर सोचा कि प्रेमा को अलग नहीं किया जा सकता, साथ रहना ही जिसका सबसे बड़ा सुख हो, उसे अलग करना कोई अर्थ नहीं रखता। चार-छह महीने बाद तो इसे जाना ही पड़ेगा। तब तक चलने दो जैसे चले। फिर देखा जायेगा।

शाम को मैंने मालिक को सूचना दी तो वे बोले, 'ठीक है। तुम लोग अभी चले चलो। हमारे घर के पास ही एक कोठरी खाली है, तुम लोगों की व्यवस्था हो जायेगी।'

मेरी तरह अब प्रेमा के भी कामों का वक्त बँध गया। सुबह चार बजे उठकर मेरे लिए चाय बनाकर मालिक के घर चली जाती। वहाँ से नौ बजे लौटकर जल्दी-जल्दी घर की रोटी सेंकती। मैं ऑफिस के लिए रवाना होता तो वह फिर मालिक के यहाँ चली जाती। ऑफिस से लौटकर मैं उसका इंतजार करता। वह आठ बजे के करीब आकर अपने चूल्हे-चौके में जुट जाती। कभी मैं पूछता कि इतने समय वहाँ क्या-क्या करती रहती हो तो मुस्कराकर कहती, 'कोई भारी काम नहीं है। सब हल्के-हल्के घरेलू काम हैं, आप कोई चिंता मत कीजिये।'

दो महीने बीतते-न-बीतते प्रेमा को हल्का बुखार रहने लगा। बुखार टूटने पर न आया तो मुझे चिंता हुई। एक रात मैंने उसके सामने अपनी चिंता व्यक्त की तो वह मुस्कराकर बोली, 'कोई बात नहीं है जरा माथा भारी रहता है, ठीक हो जाऊँगी।'

एक महीना और बीतते-बीतते उसने खटिया पकड़ ली तो मालिक ने कहा, 'भाई, अस्पताल ले जाकर दिखा लाओ।'

अस्पताल में डॉक्टर ने प्रेमा की जाँच करने के बाद मुझसे कहा, 'इन्हें बाहर बैठाकर आओ।'

ह : 1981)

प्रस्थान (कविता संग्रह : 1984)

सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

मैं बाहर बेंच पर प्रेमा को बैठाकर डॉक्टर के सामने आ खड़ा हुआ तो उसने मुझसे सवाल पूछने शुरू किये, 'तुम क्या करते हो ?—तुम्हें कितनी तनख्वाह मिलती है ? कितने बच्चे है ?—घर में कौन-कौन है ?'

मैं जवाब दे चुका तो डॉक्टर बोला, 'इन्हें टी० बी० मालूम होती है। इस हालत मे—और बहुत देर भी हो चुकी है। तुम अपने को और बच्चे को बचाओ। बड़ी खतरनाक छूत की बीमारी है। इन्हे टी० बी० अस्पताल मे भर्ती करा दो।' और नुस्खा लिखकर उसने मेरे सामने बढ़ा दिया।

मेरे हाथ-पाँव फूल गये। प्रेमा को घर पर छोड़कर मैं कार्यालय के लिए चला तो रुलाई उबलकर फूट पड़ी। मैं रो रहा था और चल रहा था। किसी बात का मुझे होश न था।

उसी हालत मे कार्यालय पहुँचा। मालिक की मेज के सामने खड़ा हुआ तो रुलाई और भी उमड़ पड़ी। उन्होंने घबराकर खड़े होते हुए पूछा, 'क्या बात है ? इस तरह क्यो रो रहे हो ?'

मैंने जेब से नुस्खा निकालकर उनके सामने बढ़ाते हुए कहा, 'डॉक्टर कहते हैं उसे टी० बी० है। अस्पताल मे भर्ती कराना होगा।'

'ओह !' उन्होने चौंककर कहा, 'रखो, इसे अपने पास ही रखो।' कहते हुए वे कुर्सी पर बैठ गये। बोले, 'यहाँ अकेले तुम क्या कर सकते हो ? बच्चे का सवाल भी है। तुम पहली गाड़ी से उन्हे अपनी ससुराल पहुँचा आओ। देर करना बिलकुल ठीक नही है।' उन्होंने जेब से बटुआ निकाला और दो दस-दस के नोट मेरी ओर बढाते हुए कहा, 'जाओ, अभी जाओ। ताँगा ले लो। मैं भी आता हूँ। ओफ !'

उसी दिन बारह बजे की गाड़ी से हम चल पड़े।

मालिक ने बार-बार ताकीद की थी कि इन्हें पहुँचाकर तुम तुरत लौट आना। लेकिन फिर मेरा लौटना न हुआ। प्रेमा के अंतिम क्षण तक मैं उसके साथ रहा। उसके होंठों की मुस्कान अंत तक बनी रही। वह अंत तक मुझे दुखी न होने की बराबर ताकीद करती रही। आखिरी दिन जाकर उसने मुझसे कहा था, 'मैं जा रही हूँ। इतने ही दिनों का हमारा साथ था। मुझसे कोई गलती हुई हो तो क्षमा कर दीजियेगा।' ●

थोड़ी देर के बाद मालिक की आवाज सुनायी दी, 'खा चुके भाई, तुम लोग ? मनोहर, तुम नीचे चलो, बाइंडर के यहाँ से मैंने एक आदमी बुला लिया है। तुम बैठे-बैठे जरा मदद कर दो। वक्त बहुत कम है।'

मैं उठा और उनके पीछे-पीछे नीचे चला आया।

काम करता रहा और सोचता रहा। आखिर सोचा कि प्रेमा को अलग नहीं किया जा सकता, साथ रहना ही जिसका सबसे बड़ा सुख हो, उसे अलग करना कोई अर्थ नहीं रखता। चार-पाँच महीने बाद तो इसे जाना ही पड़ेगा। तब तक चलने दो जैसे चले। फिर देखा जायेगा।

शाम को मैंने मालिक को सूचना दी तो वे बोले, 'ठीक है। तुम लोग अभी चले चलो। हमारे घर के पास ही एक कोठरी खाली है, तुम लोगों की व्यवस्था हो जायेगी।'

मेरी तरह अब प्रेमा के भी कामों का वक्त बँध गया। सुबह चार बजे उठकर मेरे लिए चाय बनाकर मालिक के घर चली जाती। वहाँ से नौ बजे लौटकर जल्दी-जल्दी घर की रोटी सेकती। मैं ऑफिस के लिए रवाना होता तो वह फिर मालिक के यहाँ चली जाती। ऑफिस से लौटकर मैं उसका इंतजार करता। वह आठ बजे के करीब आकर अपने चूल्हे-चौके में जुट जाती। कभी मैं पूछता कि इतने समय वहाँ क्या-क्या करती रहती हो तो मुस्कराकर कहती, 'कोई भारी काम नहीं है। सब हल्के-हल्के घरेलू काम हैं, आप कोई चिंता मत कीजिये।'

दो महीने बीतते-न-बीतते प्रेमा को हल्का बुखार रहने लगा। बुखार टूटने पर न आया तो मुझे चिंता हुई। एक रात मैंने उसके सामने अपनी चिंता व्यक्त की तो वह मुस्कराकर बोली, 'कोई बात नहीं है जरा माथा भारी रहता है, ठीक हो जाऊँगी।'

एक महीना और बीतते-बीतते उसने खटिया पकड़ ली तो मालिक ने कहा, 'भाई, अस्पताल ले जाकर दिखा लाओ।'

अस्पताल में डॉक्टर ने प्रेमा की जाँच करने के बाद मुझसे कहा, 'इन्हें बाहर बैठाकर आओ।'

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
अरघान (कविता संग्रह : 1984)

मै बाहर बैंच पर प्रेमा को बैठाकर डॉक्टर के सामने आ खड़ा हुआ तो उसने मुझसे सवाल पूछने शुरू किये, 'तुम क्या करते हो?—तुम्हे कितनी तनख्वाह मिलती है? कितने बच्चे है?—घर में कौन-कौन है?'

मैं जवाब दे चुका तो डॉक्टर बोला, 'इन्हें टी० बी० मालूम होती है। इस हालत मे—और बहुत देर भी हो चुकी है। तुम अपने को और बच्चे को बचाओ। बड़ी खतरनाक छूत की बीमारी है। इन्हे टी० बी० अस्पताल मे भर्ती करा दो।' और नुस्खा लिखकर उसने मेरे सामने बढ़ा दिया।

मेरे हाथ-पाँव फूल गये। प्रेमा को घर पर छोड़कर मै कार्यालय के लिए चला तो रुलाई उबलकर फूट पड़ी। मैं रो रहा था और चल रहा था। किसी बात का मुझे होश न था।

उसी हालत मे कार्यालय पहुँचा। मालिक की मेज के सामने खड़ा हुआ तो रुलाई और भी उमड़ पड़ी। उन्होंने घबराकर खड़े होते हुए पूछा, 'क्या बात है? इस तरह क्यो रो रहे हो?'

मैंने जेब से नुस्खा निकालकर उनके सामने बढ़ाते हुए कहा, 'डॉक्टर कहते हैं उसे टी० बी० है। अस्पताल मे भर्ती कराना होगा।'

'ओह!' उन्होने चौंककर कहा, 'रखो, इसे अपने पास ही रखो।' कहते हुए वे कुर्सी पर बैठ गये। बोले, 'यहाँ अकेले तुम क्या कर सकते हो? बच्चे का सवाल भी है। तुम पहली गाड़ी से उन्हे अपनी ससुराल पहुँचा आओ। देर करना बिलकुल ठीक नही है।' उन्होंने जेब से बटुआ निकाला और दो दस-दस के नोट मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'जाओ, अभी जाओ। ताँगा ले लो। मै भी आता हूँ। ओफ!'

उसी दिन बारह बजे की गाड़ी से हम चल पड़े।

मालिक ने बार-बार ताकीद की थी कि इन्हे पहुँचाकर तुम तुरंत लौट आना। लेकिन फिर मेरा लौटना न हुआ। प्रेमा के अंतिम क्षण तक मै उसके साथ रहा। उसके होंठो की मुस्कान अंत तक बनी रही। वह अंत तक मुझे दुखी न होने की बराबर ताकीद करती रही। आखिरी दिन जाकर उसने मुझसे कहा था, 'मैं जा रही हूँ। इतने ही दिनो का हमारा साथ था। मुझसे कोई गलती हुई हो तो क्षमा कर दीजियेगा।' ●

चुपचाप

काली बाबू दो-तीन बरसों से उदास थे और बहुत कम बोलते थे। उनके उदास रहने और कम बोलने का एक बहुत बड़ा कारण था, जिसे घर के लोग जानते थे। उनके वृद्ध पिता ने और पिता के कहने से ही उनकी माँ और पत्नी ने उन्हें बार-बार समझाया था कि राजनीति राजनीति है, कोई राजा हरिश्चन्द्र का सत्यव्रत नहीं। जब जिधर से हवा बहे, उसी ओर पीठ कर लेनी चाहिए, जब जिसका पौवा भारी दिखायी दे, उसी के सामने सिर झुका देना चाहिए। लेकिन आप हैं कि देख रहे हैं कि आपका नेता-मित्र लगातार पिसता ही जा रहा है और उसके उठने या बचने की अब कोई भी आशा नहीं रह गयी है, फिर भी आप उसी से चिपके रहना चाहते हैं। यह भी क्या कोई बुद्धिमानी की बात है?···माना कि वह आपका बड़ा अभिन्न मित्र है, उसके प्रति आपके कुछ कर्तव्य भी जरूर हैं, गाढ़े वक्त पर आपको उसकी सहायता भी जरूर करनी चाहिए, लेकिन इस तरह तो नहीं न कि उसके साथ-साथ आप खुद भी गड्ढे में गिर जायें। उसकी सहायता तो आप और भी कई तरह से कर सकते हैं। फिर जब आप खुद भी बर्बाद हो जायेंगे, तो उसकी क्या सहायता कर सकेंगे? जरा सोचिये और समझदारी से काम लीजिये।···आप कोई कृष्ण तो हैं नहीं कि सुदामा को दो लोक देकर भी

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
परवाम (कविता संग्रह : 1984)
...हाबाद, सागर—470003

तीनों लोक के राजा ही बने रहे।···और आप अपने सुदामा को समझते क्या हैं? क्या आपका यह खयाल है कि वह आपके ही साथ और सहायता से जिंदा रहेगा? क्या आपको मालूम नहीं कि उसने कितनी संपत्ति जोड़ ली है? अगर उसकी आमदनी के सब रास्ते बंद भी हो जायें, तब भी उसकी जिंदगी आराम-ऐश से कट जायेगी···

काली बाबू बड़े धीरज से सिर झुकाये हुए सब की सुन लेते। कभी-कभी सिर भी हिला देते और दो-एक शब्द भी मुंह से निकाल देते—आप ठीक ही कहते हैं। लेकिन आप लोग उन्हें नहीं समझते। वे तो बिलकुल साधू हैं। उनके बारे में लोग जो चाहे कहें, उनके पास कुछ भी नहीं है।···

पिता कहते—खूब समझते हैं हम लोग उस बगुला भगत को।···हम उसका वह जमाना नहीं भूले हैं, जब इरविन रोड पर उसने साईकिल-मरम्मत की एक दूकान खोली थी और खुद भी पहियों में हवा भरा करता था···फिर उसने एक साईकिल रिक्शा कसवाया था···। फिर उसके पास एक-एक कर दस रिक्शे हो गये थे···और एक दिन हमने अखबार में पढ़ा था कि वह रिक्शा चालक यूनियन का मंत्री बन गया है···और फिर तो···बढ़ते-बढ़ते वह मुख्यमंत्री भी बन गया···

काली बाबू जैसे भक्ति-भाव में डूबकर अपना हाथ उठाकर पिता को आगे बोलने से रोक देते और जरा मुस्कुराकर कह देते—वे ऐसे ही प्रतिभावान हैं···वे अब भी आपकी साईकिल में हवा भर सकते हैं···और जब चाहे अपने खोये हुए पद को भी प्राप्त कर सकते हैं। मैं उन्हें जानता हूँ. आप लोग देखियेगा। लेकिन उन्हें न तो कोई दुख होता है और न खुशी। सेवा, त्याग और काम के सिवा आज तक उन्होंने कुछ भी न जाना···

कह-कहकर, आखिर हार मानकर लोग चुप हो गये थे। काली बाबू अपने रास्ते पर चलते रहे। उनकी उदासी गंभीरता में बदलती गयी। वे सुबह ठीक समय पर कचहरी जाते, शाम को कचहरी से सीधे अपने मित्र-नेता के यहाँ चले जाते और रात को ग्यारह-बारह बजे तक घर लौटते।

एक दिन रात को बारह बजे वे घर लौटे तो उनके पिता ने एक लिफाफा उनकी ओर बढ़ाकर रोते हुए कहा—बताओ, अब मैं क्या करूँ? कितना तुमसे कहा कि तुम अपनी बेवकूफी छोड़ दो लेकिन तुम न माने!

उसी का यह नतीजा है। हमारे सभी पैट्रोल-पंप चले गये।···

काली बाबू ने वह चिट्ठी पढ़ी और बिना किसी उद्वेग के कह दिया—कोई बात नहीं। आप घर पर बैठकर आराम कीजिये और इंतजार कीजिये।

पिता ने चकित होकर पुत्र की ओर देखा और भीगी पलकें झपकाते हुए कहा—तुम्हें पता है, कितने हजार महीने की आमदनी का हमारा साधन छिन गया?

—पता है, बाबूजी—काली बाबू ने अपने उसी स्वर में कह दिया—मुझे ही पता न होगा?···आप परेशान मत होइये। जाकर आराम कीजिये और इंतजार कीजिये।

—तुम जाकर एक बार किसी से कुछ कहोगे भी नहीं?

—नहीं। मैं और किससे कुछ कहूँ? आप तो जानते हैं, मैं एक का ही भक्त हूँ।···

उनके प्रतिद्वंद्वियों का चक्र अब घूमने लगा था। तीन दिन बीतते-न-बीतते काली बाबू के बड़े बेटे ने एक रात उन्हें बताया—बाबूजी, हमारे सबही ट्रकों के रूट कैंसिल हो गये। अब मैं क्या करूँ?

काली बाबू ने सुना और शांत स्वर में कह दिया—गाड़ियों को वर्कशाप में खड़ी कर दो और इंतजार करो।

—नहीं बाबूजी!—बेटे ने गिड़गिड़ाकर कहा—हमारा सत्यानाश हो जायेगा! हमें और कोई रूट दिलवा दीजिये।

—इस समय कोई रूट हमें नहीं मिलेगा।—काली बाबू ने कह दिया—तुम जाओ और चुपचाप बैठो और इंतजार करो।

और इतना बीतते-बीतते उनके दूसरे बेटे की स्प्रिट और मिट्टी के तेल की सोल एजेंसियाँ भी चली गयीं। साथ ही काली बाबू की प्रैक्टिस भी अचानक ही बैठ गयी। उनके यहाँ मुअक्किलों का आना-जाना बिलकुल ही बंद हो गया। ट्रांसपोर्ट कमिश्नर के कार्यालय के अफसरों की निगाहें ही बदल गयीं। जो अफसर 'काली बाबू-काली बाबू' की धुन गाया करते थे, वे उनसे आँखें मिलाने से भी कतराने लगे, तो काली बाबू के यहाँ कोई मुअक्किल क्या करने आता? फिर भी काली बाबू रोज कचहरी जाते, कोई

उस अनवर का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1951)
(कविता संग्रह : 1974)
विश्वविद्यालय, सागर—470003)

काम न होने के कारण लायब्रेरी में चुपचाप बैठे रहते और जब जी ऊब जाता, तो अपने मित्र-नेता की कोठी की ओर चल देते।

उनके घर मे सन्नाटा छा गया। सब अपने-अपने कमरे में बैठे झींकते और कुड़बुड़ाते रहते, लेकिन काली बाबू से कोई बात कहने की हिम्मत न करता। वे जानते थे कि सब काली बाबू का ही बनाया-जमाया हुआ था, अब काली बाबू सब बिगाड-उखाड भी दें, तो कोई क्या कह सकता है?

घर मे एक पैसा भी कहीं से न आ रहा था। कितना बाहर निकलता जा रहा था, कोई हिसाब नहीं। काली बाबू कितना पैसा अपने मित्र-नेता को दे रहे थे, कौन जाने। सारा नकदा धन खत्म हो गया, तो सबसे पहले ट्रकों के बिकने की बारी आयी। कुछ दिनों मे ही औने-पौने मे सभी ट्रक निकल गये। काली बाबू के माता-पिता, पत्नी-बेटो की आँखो से आँसू बरसते रहे। पिता से न सहा गया, तो उन्होने एक दिन गिडगिडाकर कहा—क्या तुम हमें कगाल बनाकर ही दम लोगे?

काली बाबू ने बिना किसी उद्वेग के कह दिया—

साईं मेरे पास जो सब-का-सब है तोर,
तेरा तुझको सौंपता क्या लागे है मोर?

हम लोग कगाल ही तो थे।

दो-तीन बरस इसी तरह बीत गये। काली बाबू के चेहरे की उदासी पर गभीरता की परतें चढती गयी थी। उनके मुँह से निकलने वाले शब्दो की संख्या लगातार कम होती गयी थी। लेकिन उनकी पेशानी पर दुख या आकुलता की एक भी शिकन कभी किसी ने न देखी। लगातार हार-पर-हार खाते जाने वाले, मार-पर-मार खाते जाने वाले इस व्यक्ति मे कितना धैर्य, कितनी सहनशीलता और अपने मित्र-नेता के लिए कैसी भक्ति-भावना थी!

आखिर विधान-सभा के चुनाव का समय आया, तो काली बाबू ने अपनी पाँचो कोठियाँ एक ही साथ गिरवी रख दी। काली बाबू के पिता ने खबर सुनी, तो उनका कलेजा फट गया और मिनटो में ही वह दुनिया छोड़ गये। माँ ने काली बाबू को पितृहता कहा और गला फाड़-फाड़कर रोती हुई बोली—हम सबका गला उमेठकर नदी मे बहा दो और फिर मसान मे बैठ-

कर अपने मित्र की सफलता के लिए तपस्या करो।

लेकिन काली बाबू एक शब्द भी न बोले। उनकी आँखों में आँसू एक बूँद भी दिखायी न दी। काली बाबू ने आखिरी दाँव पर जैसे अ सर्वस्व लगा दिया हो। घर के लोगों ने सोचा और बड़ी बेताबी से इंतजा करने लगे कि देखो पासा पड़ता है कि सब ले बीतता है।

काली बाबू का पासा पड़ गया। उनका मित्र-नेता चुनाव जीत गया। घर के लोगों ने राहत की साँस ली। लेकिन काली बाबू पर तो जैसे इस जीत का भी कोई प्रभाव न पड़ा हो। उनके होठों पर मुस्कान की एक रेखा भी न दिखायी दी। उनके चेहरे की उदासी अब और भी घनी हो गयी।

घर के लोग चकित कि अब वे क्यों उदास हैं, क्यों चुप हैं ? अब तो उन्हें खुश होना चाहिए और पहले ही की तरह हँसना-बोलना चाहिए। उनके मित्र-नेता का भाग्य फिर चमक उठा है। अब उन्हें राजा नल की तर अपना राज-पाट वापस पाने में कितनी देर लगेगी !

लेकिन नहीं, दुर्भाग्य से जो आदमी विचलित न हुआ, वह सौभाग्य क्यों विचलित हो ? और फिर राजनीति तो एक चक्रव्यूह है। इसमें फँसकर कितने अभिमन्युओं का नाम-निशान न मिट गया ! अभी देखो, क्या होता है। अभी तो उनके मित्र-नेता ने चक्रव्यूह का एक ही द्वार पार किया है। एक बाजी जीत लेना ही तो असल चीज नहीं है, असल चीज तो यह है कि आखिरी बाजी के बाद क्या मिला।

काली बाबू शायद उसी असली चीज का इंतजार कर रहे थे। यही कारण उनकी गहन गंभीरता, उदासी और चुप्पी का था।

घर के लोग भी इंतजार करने लगे। अखबारों की अटकलबाजियाँ, सड़कों की अफवाहें, दिल्ली की दौड़-धूप। आखिर रेडियो से खबर आ ही गयी। काली बाबू के मित्र-नेता ने आखिर चक्रव्यूह का आखिरी द्वार भी तोड़ दिया था। सुबह के अखबारों में हारों से लदा हुआ उसका चित्र था। वह हँस रहा था। उसकी खुशी का कोई ओर-छोर ही न था।

घर के लोगों ने फिर खुशी जाहिर की। लेकिन काली बाबू पर तो जैसे इतनी भारी खबर का भी कोई प्रभाव ही न पड़ा हो। वे वैसे ही चुप,

(कविता संग्रह : 1951)
(कविता संग्रह : 1954)

उदास और गंभीर बने रहे। उनकी माँ, पत्नी, बेटे सब खुशी के मारे हँस रहे थे, लेकिन काली बाबू पहले ही की तरह चुप!

अब काली बाबू पर गुस्सा दिखाना संभव न था। कोई सख्त बात भी उनसे न कही जा सकती थी, क्योंकि उनका अभिन्न मित्र-नेता अब मुख्यमंत्री हो गया था। फिर भी माँ ने, पत्नी ने, बेटों ने इतना तो उनसे कहा ही—अब आप घर पर बैठे-बैठे क्या कर रहे हैं? पहले तो आप अपने मित्र-नेता के साये के साथ चिपके रहते थे, अब आपको उसके बिना चैन कैसे मिल रहा है? क्यों नहीं जाते राजधानी, अपने मित्र के पास? क्यों नहीं जाकर उन्हें बताते कि आपने अपना सर्वस्व उनके ऊपर न्यौछावर कर दिया, अब खाने के भी लाले पड़ने वाले हैं। देखें तो कि वे क्या कहते हैं।···आखिर सुदामा को भी तो द्वारका जाना पड़ा था···

कह-कहकर सब हार मान गये। काली बाबू न तो टस-से-मस हुए, न एक बात उन्होंने अपने मुँह से निकाली। घर के लोग परेशान और चकित होकर रह गये कि कहीं काली बाबू का अपने मित्र-नेता के साथ कोई झगड़ा तो नहीं हो गया!

तीन महीने बीत गये और काली बाबू जैसे-के-तैसे बने रहे तो एक बार फिर माँ ने उन्हें समझाना शुरू किया—बेटे, यह सतजुग नहीं कलजुग है। तुम कब तक यों हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहोगे? यों कब तक चलेगा? जाओ, एक बार अपने मित्र से मिल तो आओ!" कितने दिन हो गये तुम उनसे मिले भी नहीं।

लेकिन काली बाबू किसी की सुनने वाले न थे। वे जैसे-के-तैसे बने रहे।

चौथा महीना बीतते-न-बीतते एक सुबह काली बाबू के बड़े लड़के ने फाटक पर कार से उतरते हुए महाजन को देखा, तो वह घबरा उठा। जिस कोठी में वे रहते थे, वह इसी महाजन के यहाँ गिरवी थी। पता नहीं, बाबूजी ने सूद भी चुकाया था कि नहीं। क्या अब उन्हें आसमान के नीचे रहना पड़ेगा? वह सकपकाकर एक ओर खड़ा रह गया।

महाजन ने ओसारे में चढ़कर उसी से पूछा—काली बाबू हैं न?

लड़के ने सूखे कंठ से कह दिया—पता नहीं, देखता हूँ।

अंदर जाकर उसने बताया तो काली बाबू ने बैठक में आकर महाजन का स्वागत किया। महाजन ने मुस्कुराकर उन्हें नमस्ते किया। काली बाबू का पूरा परिवार पर्दे के पीछे जैसे अपने भाग्य का फैसला सुनने के लिए इकट्ठा हो गया था।

महाजन ही बोला—सबसे पहले ये कागज आप अपने पास रख लीजिये, फिर कोई बात होगी।

काली बाबू ने कागज अपने हाथ में ले लिए। उन्हें खोलकर देखा भी नहीं और मुँह से कुछ कहा भी नहीं। महाजन ने अचकचाकर उनकी ओर देखा। फिर पूछा—आप हमसे नाराज तो नहीं हैं?

काली बाबू को जैसे अपना सिर हिलाने में भी बड़ा कष्ट हुआ।

—तो फिर मेरे लायक कोई सेवा बतायें?—महाजन ने निवेदन किया—कोई कार-बार आप शुरू करें तो मैं आपकी मदद कर सकता हूँ।

अब जाकर काली बाबू के होंठों की सीवन टूटी—धन्यवाद!—और वे उठ खड़े हुए।

महाजन यह कहता हुआ चला गया—आप सोच लीजिये। यों आपको जल्दी ही कुछ करना चाहिए। काफी दिन बैठकी हो चुकी।

महाजन के जाते ही पूरा परिवार बैठक में घुस गया। बड़े लड़के ने पिता के हाथ से कागज लेते हुए पूछा—ये कैसे कागज हैं, बाबूजी?

काली बाबू ने कोई जवाब न दिया। वे अपने दफ्तर में जाकर बैठ गये। लड़के ने कागज देखकर, खुश होकर परिवार वालों को बताया—ये गिरवी के कागज हैं। हमारी यह कोठी तो छूट गयी मालूम होती है, बाबूजी ने महाजन के पैसे चुका दिये! यह देखो, भरपाई की यह रसीद है!

–हे भगवान!—काली बाबू की माँ हाथ जोड़कर और सिर ऊपर उठाकर बोल पड़ी—आखिर तू प्रसन्न हुआ! तुझे बहुत-बहुत धन्यवाद!

दोनों लड़कों ने दफ्तर में जाकर किताबों की आलमारियों पर जम गयी गर्द को साफ किया। वे मुस्कुरा-मुस्कुराकर बड़ी मेज के सामने ऊँची कुर्सी पर बैठे अपने पिता की ओर देख लेते थे। लेकिन काली बाबू के चेहरे पर जमी हुई उदासी और गंभीरता में कोई दरार पड़ ही न रही थी।

दूसरे महाजन भी गिरवी के कागज वापस कर गये। फिर मुअक्किलों

उस अवसर का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
[illegible] (कविता संग्रह : 19[illegible])
[illegible] —470033

का आना शुरू हुआ। काली बाबू कचहरी जाने लगे। अफसरों ने उनका फिर वैसे ही स्वागत किया, जैसे दो-तीन बरस पहले करते थे। लेकिन काली बाबू तो मुस्कुराये भी नहीं। अफसरों ने शाम को दावत पर चलने के लिए कहा, तो काली बाबू को जैसे इतना कहने में भी बड़ी तकलीफ हुई—नहीं, मुझे माफ करें! मेरी वे सब आदतें छूट गयी। अब शाम को मैं पूजा करता हूँ।

फिर एक दिन नगर-प्रमुख आये और बोले—काली बाबू, आप शहर में पेट्रोल-पंपों के लिए जगहें चुनकर मुझे बता दीजियेगा। जगहें आपको तुरत मिल जायेंगी।

फिर एक-एक कर कई बैंकों के मैनेजर आये और बोले—काली बाबू, आपको जितने रुपयों की जरूरत हो, हमारे यहाँ से ही लीजियेगा, और कहीं जाने की जरूरत नहीं!

फिर एक रात उनकी कोठी के सामने बीस नये ट्रकों का एक कारवाँ ही आकर खड़ा हो गया और कंपनी का एक कर्मचारी काली बाबू के हाथ में उन ट्रकों का कैशमेमो थमा गया।

ट्रांसपोर्ट के अफसरों ने बिना उनसे पूछे ही लायसेंस बना दिये और बेहतरीन रूट दे दिये।

फिर नायलान ट्यूब-टायरों की एजेंसी के कागज आ गये।···

काली बाबू की कोठी की रौनक फिर वापस आ गयी। परिवार हँसी-खुशी के मारे लहालोट हो उठा। लेकिन काली बाबू वैसे ही उदास, गंभीर और खामोश बने रहे।

इजलास में भी वे बहुत कम बोलते, लेकिन फैसला उनके पक्ष में ही होता।

वे किसी से बात भले ही न करें, लेकिन कितने अफसर, महाजन, नेता उनके यहाँ हाजिरी देते रहते और उनके लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करते रहते।

एक रात उनकी पत्नी ने उनका पाँव दबाते हुए उनसे पूछा—क्यों जी, जितना गया था उससे भी कहीं ज्यादा आ गया है और जिस तरह आ रहा है, कहा नहीं जा सकता कि और कितना आ जायेगा, फिर भी आप उदास

क्यों रहते हैं, किसी से कोई बात क्यों नहीं करते ?

—तुम क्या करोगी जानकर ?—काली बाबू ने पूछा।

—नहीं, बताइये !—पत्नी बोली—मुझे डर लग रहा है कि लगातार उदासी से कहीं आपका स्वास्थ्य खराब न हो जाये और लगातार चुप रहने से कहीं आप गूंगे न हो जायें !

—नहीं, ऐसा नहीं होगा—काली बाबू ने बताया—मैं मन से अब बहुत प्रसन्न हूं और अपने-आप से बातें भी खूब करता हूं। मैं कुत्तों के सामने अपनी खुशी क्यों जाहिर करूं ? मैं कुत्तों से क्यों बातें करूं ?

—आप क्या कहते हैं ? पत्नी ने अचकचाकर पूछा—इतने बड़े-बड़े अफसर, महाजन, नेता···

सब-के-सब कुत्ते हैं।—काली बाबू बोले—मैंने जरा ढील दी नहीं कि सब मुझे और मेरे मित्र को नोचने लगेंगे। ये ही तो वे अफसर, महाजन, नेता हैं ·

—लेकिन दो-तीन बरस पहले तो आप उनके साथ खूब मौज-मजा उड़ाते थे ·

—वे दिन चले गये। · लो, यह पत्र तुम पढ़ लो। लेकिन इस पत्र के बारे में तुम किसी से भी कुछ न कहोगी, पहले मुझे वचन दो।

क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं ? भला आज तक आपकी कोई भी बात मैंने किसी से कही है ?

- तो लो पढ़ लो।

काली बाबू की पत्नी बड़ी उत्सुकता से पत्र पढ़ने लगी—

मेरे काली,

यह पत्र अपने एक खास आदमी के हाथ एक खास बात के लिए भेज रहा हूं।

मैं जानता हूं, इस समय शहर में सबकी नजरें तुम पर होंगी। लेकिन तुम्हारी नजर किसी की ओर भी नहीं उठनी चाहिए। कुत्ते तुम्हारे सामने पूंछ हिलायेंगे, लेकिन तुम उनकी ओर बिलकुल ध्यान न देना। बिलकुल खामोश रहना और मुझसे मिलने भी कभी भी न आना।

देश और प्रदेश की जो स्थिति है, उसमें मैं कितने दिनों तक इस पद

पर बना रहूँगा, ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। इसलिए जल्दी-से-जल्दी तुम्हारे लिए जो भी संभव है, मैं कर रहा हूँ। तुम जल्दी ही अपने लिए कोई स्थायी, पक्का और बड़ा साधन बना लो, ताकि फिर कभी तुम्हें किसी कठिनाई का सामना न करना पड़े। जब तक मेरे हाथ मे डंडा है, तुम्हें *किसी भी कुत्ते से जरा भी डरने की कोई जरूरत नही।*

अखबारों मे मेरे भाषणों को तुमने जरूर पढ़ा होगा। मैंने अपने प्रदेश मे भ्रष्टाचार को जड़-मूल से मिटा देने का ऐलान किया है। जिन अफसरों, महाजनो और नेताओ ने मेरी ओर से नजरे फेर ली थी, उनमें से एक-एक की मैं खबर लूंगा ? तुम देखते जाओ मैं क्या-क्या करता हूँ।

पत्नी की ओर हाथ बढाते हुए काली बाबू ने पूछा—पढ़ चुकी न ?

—जी, पढ़ चुकी।—पत्र काली बाबू के हाथ में देती हुई पत्नी बोली —मुझे तो होल-सा हो रहा है। क्या एक-दो साल भी··

—कुछ नही कहा जा सकता—काली बाबू ने चिट्ठी को जलती सलाई दिखाते हुए कहा—मैं तो भगवान को धन्यवाद देता हूँ कि हम बाल-बाल बच गये ! अब घबराने की कोई भी बात नही है। तुम भी मेरी ही तरह खुश रहो और मेरे मित्र के लिए भगवान से चुपचाप प्रार्थना करो ! ●

हनुमान

मैं अभी कुर्सी पर बैठा ही था कि मालिक सामने आकर चीखने लगा, 'देखी आपने उन सबकी यूनियनबाजी ?'

उसका 'यूनियनबाजी' शब्द मेरे दिमाग पर एक हथौड़े की तरह बज उठा। भिन्नाकर मैंने उसकी ओर देखा। वह मुझसे भी ज्यादा भिन्नाया हुआ था। उसकी भौंहें चढ़ी हुई थीं, नथुने फैले हुए थे और होंठ फड़के हुए थे। मैंने कहा, 'मैं तो अभी आ रहा हूं। मुझे क्या मालूम कि क्या हुआ।'

'आप आइये मेरे कमरे में!' वह हुक्म देकर चला गया।

मैंने माथे का पसीना पोंछते हुए अपने सहयोगियों की ओर देखा, तो एक सहयोगी बोला, 'आपके आने के थोड़ी ही देर पहले प्रेस में हल्ला हुआ था। मालूम हुआ कि हनुमान ने नये सुपरवाइजर वर्मा को थप्पड़ मार दिया।'

हनुमान ने थप्पड़ मार दिया ?' मैंने आश्चर्य से पूछा।

'यही तो आश्चर्य की बात है। क्या हनुमान किसी को थप्पड़ मार सकता है ?'

'नहीं।' मेरे मुंह से निकला, ऐसा नहीं हो सकता! और कुछ मालूम

है ?'

'नहीं। वर्कर बौखलाये हुए है। साहब ने शायद उन्हें डाँटा है। हो सकता है कि हनुमान की पेशी हो। आप जाइये, साहब आपको बुला गये हैं न।'

मैं मालिक के कमरे में पहुँचा। उस समय वह सिगरेट जला रहा था। उसने पलकें उठाकर मेरी ओर देखा। फिर लाइटर बुझाकर, उसी हाथ से मेरी ओर बैठने के लिए संकेत किया।

मैं बैठने लगा, तो उसने जोर से घंटी की स्विच दबायी। उसके दरवाजे के बाहर ऊपरी चौखट पर एक नहीं, दो घंटियाँ लगी हैं। वे जोर से बजाने पर खतरे की घंटी की तरह घनघना उठती है और सारा प्रेस चौंक उठता है।

चपरासी ने दरवाजा खोलकर अभी अपना सिर ही अंदर किया था कि मालिक चीख उठा, 'वर्मा और हनुमान को तुरंत बुला लाओ!'

चपरासी उल्टे पांव चला गया, तो मालिक ने सिगरेट का एक जोर का कश लिया और धुएँ को जैसे दाँतों से चबाते हुए चीखा, 'मैं यूनियन-बाजी नहीं चलने दूँगा!'

'आपने यही कहने को मुझे बुलाया है?' मैंने धीरे से कहा, 'आपके मुँह से दूसरी बार यह शब्द सुन रहा हूँ! आपके लिए जो यूनियनबाजी है, वह हमारे लिए हमारे अस्तित्व का पर्याय है। किसी के अस्तित्व को गाली देने का क्या मतलब होता है, आप जानते हैं? आपके क्षोभ और घृणा को मैं समझता हूँ। लेकिन आप यह क्यों सोचते हैं कि आपके क्षोभ और घृणा की खातिर ही हम अपने अस्तित्व का बलिदान कर देंगे?'

'नहीं', उसने जल्दी-जल्दी दो कश लेकर, अपनी एक रुपये की कीमती सिगरेट का आधे से ज्यादा हिस्सा राखदान में डालकर कहा, 'लेकिन यूनियन का क्या यह मतलब होता है कि कोई मामूली वर्कर किसी अधिकारी को झापड़ मार दे? आपको मालूम है कि अभी थोड़ी देर पहले प्रेस में क्या हुआ है?'

'नहीं', मैंने कहा, 'लेकिन आप जो बतायेंगे, मैं उसी पर विश्वास कर लूँगा, यह आप मत सोचिये। मैं...'

तभी दरवाजा खुला और उसका एक पल्ला पकडकर चपरासी खड़ा हो गया। दूसरा पल्ला आप ही बंद हो गया। फिर खुले पल्ले से पहले वर्मा और फिर हनुमान अंदर आ गये, तो चपरासी पल्ला छोड़कर बाहर चला गया और वह पल्ला भी उसके पीछे-पीछे आप ही बद हो गया।

वे दोनों मालिक के दाये, मेज से जरा दूर खडे हो गये। दोनों अधेड़ उम्र के थे। लेकिन दुबला-पतला, पिचके गालो और सफेद बालो वाला वर्मा अपनी उम्र से ज्यादा का और मोटा-तगड़ा, फूले-फूले गालो और छोटे-छोटे काले बालो वाला हनुमान अपनी उम्र से कम का लगता था। वर्मा मामूली कपड़े की पैंट-शर्ट और मामूली सैंडिल पहने था और हनुमान सिर्फ एक फटा-पुराना, मैला-कुचैला जाँघिया पहने था और उसके गदे-भद्दे पाँव नगे थे। वर्मा गहुँए रग था और हनुमान काला-कलूटा। वर्मा चश्मा लगाये हुए था और हनुमान की छोटी-छोटी आँखें पीली दिखायी देती थी। वर्मा के सूखे चेहरे पर लानत बरस रही थी और हनुमान का चेहरा एकदम निर्भाव था, लेकिन उसके मोटे-मोटे होठ कुछ ऐसे बने थे कि लगता था, जैसे वे हमेशा मुस्कराते रहते हो। वर्मा की बायी कलाई मे घड़ी थी और हनुमान के दोनो हाथो मे स्याही पुती थी। वर्मा मालिक की ओर देख रहा था और हनुमान सामने हवा मे।

मालिक ने वर्मा से कहा, 'इनके सामने बताओ, क्या हुआ?'

वर्मा ने सूखे कठ से बताया, 'मैं इनके पास से जा रहा था कि अचानक इन्होंने मेरे मुँह पर एक झापड मार दिया।'

मालिक ने भौहें टेढ़ी कर हनुमान से पूछा, 'तुमने इसे क्यों मारा?'

हनुमान बुत की तरह हवा मे ही देखता रहा। वह कुछ नही बोला।

'क्या नही बोलता?' मालिक और भी जोर से चीखा, 'मैं तुमसे कुछ पूछ रहा हूँ?'

हनुमान उसी तरह बुत बना हवा मे देखता रहा और उसके होठ वही प्रश्न मुस्कान बिखेरते रहे। शायद वह मुस्कान देखकर ही मालिक और भी चिढ़ गया। उसने 'हूँ' कर, मेरी ओर देखकर कहा, 'देखा आपने? इसकी धृष्टता का क्या मतलब है?'

'कुछ नहीं', मैंने बताया, 'ये तो मौनी बाबा है, कभी-कभी ही अपना मुंह खोलते हैं और तब भी हाँ-ना से ज्यादा नहीं बोलते।'

'क्या मतलब ?' चकित होकर मालिक ने पूछा।

'ये आपके पिता के जमाने से आपके यहाँ काम करते है, क्या आपको इनके स्वभाव के बारे मे नही मालूम ?'

'हमारे यहाँ तीन सौ से ज्यादा वर्कर काम करते है', मालिक ने कहा, 'मैं किस-किस के स्वभाव के बारे में मालूम करता फिरूँगा ?'

मैंने उसका जवाब न देकर वर्मा से पूछा, 'क्यों भाई वर्माजी, जब यह घटना घटी, वहाँ और भी कोई था ?'

'बहुत सारे थे', वर्मा ने बताया, 'सब देखकर हँसने लगे।'

'तुम जाओ वर्मा, अपना काम देखो !' मालिक ने कहा। वह नही चाहता था कि मैं वर्मा से कुछ पूछूँ।

वर्मा चला गया, तो मालिक फिर बिगड़कर बोला, 'बोलता क्यों नही, बे ? तूने वर्मा को क्यो मारा ?'

हनुमान के होंठो की मुस्कान गायब हो गयी और नथुने फड़क उठे। मुझे लगा कि अब कुछ अशोभन घटने ही वाला है। मैंने तत्क्षण उठकर, हनुमान का हाथ पकड़कर कहा, 'आप चलिये।'

'जाकर गेट पर बैठो !' मालिक चीखा, 'प्रेस के अंदर मत जाना ! तुम्हारे खिलाफ अनुशासन की कार्रवाई होगी !'

मैं हनुमान को लेकर बाहर आया। बाहर वर्करों की भीड़ लगी हुई थी। सेक्रेटरी ने मुझसे पूछा, 'क्या हुआ ?'

'हुक्म हुआ है कि ये गेट पर बैठें, इनके खिलाफ अनुशासन की कार्रवाई होगी।' मैंने बता दिया।

'अच्छा ! तो हम सब भी गेट पर ही बैठेंगे !' कई वर्कर एक साथ ही बोल उठे और वे हनुमान को लेकर गेट की ओर चल पड़े।

मैं अपनी कुर्सी पर जा बैठा।

मेरे उसी सहयोगी ने उत्कंठित होकर मुझसे पूछा, 'क्या हुआ ? वर्कर बिफरे हुए हैं।'

मैंने मालिक का हुक्म बता दिया।

'हनुमान कुछ बोले थे ?'

'नही।'

यह तो बहुत बुरा हुआ, साहब को शायद नही मालूम कि वर्कर हनुमान को कितना मानते हैं।'

'नही मालूम है, तो अब मालूम हो जायेगा !'

तभी गेट पर से नारों की आवाज आयी—हमारी यूनियन, जिंदाबाद ! हनूमान, जिंदाबाद !...

घंटी जोर से चीख उठी। चपरासी भागा-भागा गया।

दस-बारह मिनट बाद चपरासी ने मेरे पास आकर बताया, 'साहब ने सिक्योरिटी अफसर को बुलाया था। उसे हनुमान के खिलाफ रिपोर्ट करने के लिए थाने भेजा है। बाबूजी, क्या हनुमान को पुलिस गिरफ्तार कर ले जायेगी ?'

'देखो' मैंने कह दिया।

तभी घंटी फिर चीख उठी। चपरासी भागा कि मालिक खुद मेरे पास आकर बोला, आप सेक्रेटरी के साथ मेरे पास आइये।'

'आप सेक्रेटरी को बुला लीजिये।' मैंने बैठे-बैठे ही कह दिया।

उसने जरा देर कुछ सोचकर चपरासी से कहा, 'जाओ, सेक्रेटरी को बुला लाओ।' और अपने कमरे में चला गया।

सेक्रेटरी ने मेरे पास आकर कहा, 'साहब ने मुझे बुलाया है, जाऊँ कि न जाऊँ ?'

'न जाने की क्या बात है ?' मैंने कुर्सी से उठते हुए कहा, 'चलिये ?'

'लेकिन आपको कुछ मालूम नही होगा।' उन्होंने कहा, 'आपको बताने का मौका ही नही मिला। क्या कहेंगे ?'

'जो सच है, वही कहूँगा। फिर मुझे जो कहना होगा, कहूँगा। वर्मा ने हनुमान पर जो इल्जाम लगाया है, उस पर मुझे विश्वास नही। चलिये।'

हम दोनों मालिक के कमरे में पहुँचे। उसने हमें बैठने के लिए इशारा किया। हम बैठ गये, तो उसने आधी से कम ही जली सिगरेट राखदान में दाबकर सेक्रेटरी से पूछा, जब हनुमान ने वर्मा को झापड़ मारा, आप वहाँ

उस जनपद का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1981)
[illegible] (कविता संग्रह : 1974)
[illegible]

थे ?'

'हाँ, था', सेक्रेटरी ने बताया।

'प्रेस के अंदर ऐसी वारदात हो गयी और आप लोग हँसते रहे ?' मालिक ने पूछा।

'हाँ, जिस वर्कर ने भी देखा, वह हँसे बिना रह ही नहीं सकता था !' सेक्रेटरी ने कहा।

'सुना आपने ?' मालिक ने मुझसे कहा, 'अब आप ही बताइये, मैंने हनुमान के खिलाफ जो कार्रवाई की है, क्या वह गलत है ?'

'हाँ, सरासर गलत है।' मेरे पहले ही सेक्रेटरी बोल पड़े, 'इन्हें मालूम नहीं है कि हनुमान जैसे निपट निरीह आदमी ने वर्मा को झापड़ क्यों मारा।'

'तो आप ही बता दीजिये', मालिक ने अपनी नाक के बाँसे को दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से दबाते हुए कहा, 'वह भी सुन लूँ।'

यह नाक का बाँसा दबाने की आदत भी मालिक की है। जब वह सामने के आदमी को यह दर्शाना चाहता है कि वह बड़ी गहराई से सोचकर अपने मुँह से बात निकाल रहा है, तो वह यह हरकत करता है।

सेक्रेटरी ने अपने गंदे पायजामे की जेब से एक फटा हुआ कागज निकालकर मालिक को दिखाते हुए कहा, 'वर्मा इस कागज पर हनुमान से दस्तखत कराना चाहता था।'

'लेकिन वर्मा तो कहता था····'

'आप रुकिये !' मालिक ने मुझे रोककर सेक्रेटरी से कहा, 'लाइये, जरा मैं देखूँ तो यह कागज।'

'नहीं', सेक्रेटरी ने कहा, 'चूँकि आपने हनुमान के खिलाफ कोई जाँच किये बिना ही कार्रवाई शुरु कर दी है, इसलिए मैं यह कागज आपको नहीं दूँगा। हाँ, आप चाहें तो मैं इस पर जो लिखा है, उसे पढ़कर सुना सकता हूँ।'

फिर नाक का बाँसा दबाते हुए मालिक ने कहा, 'अच्छा, तो सुना दीजिये।'

सेक्रेटरी ने दो टुकड़ों में फटे कागज को जोड़कर सुनाया, 'प्रेस के हम

निम्नलिखित कर्मचारी प्रेस वर्कर्स यूनियन से इस्तीफा देकर प्रेस वर्कर्स वेलफेयर यूनियन में शामिल हो रहे हैं। सुरेश वर्मा...' सुनाकर सेक्रेटरी ने कहा, 'दूसरे नंबर पर वह हनुमान के दस्तखत कराना चाहता था।'

'तो!' आँखों को दबाते हुए मालिक ने कहा, 'आपकी बात मैं मान भी लूँ, तो क्या इसी कारण हनुमान को उसे झापड़ मार देना चाहिए? वह दस्तखत न करता, वर्मा उससे कोई जबरदस्ती दस्तखत तो करा नहीं रहा था। दूसरी बात यह है कि क्या हनुमान पढ़ना-लिखना जानता है?'

'पढ़ना-लिखना तो वे नहीं जानते', सेक्रेटरी ने बताया, 'लेकिन उन्हें मालूम था कि वर्मा यह हरकत करेगा।'

'कैसे?' मालिक ने पूछा।

सेक्रेटरी ने मेरी ओर देखा, तो मैंने मालिक को बताया, 'पिछले महीने पहली तारीख को जब अचानक आपने वर्मा की तनख्वाह दूनी करके उसे सुपरवाइजर बना दिया था, तो हमारे कान खड़े हो गये थे। हमने पता लगाया तो मालूम हुआ कि आपने हमारी यूनियन तोड़कर अपनी यूनियन बनाने के लिए उसके सामने यह चारा डाला था। तब हमने यूनियन की मीटिंग की थी। उसमें हनुमान भी शामिल थे। उन्होंने एक ओर चुपचाप बैठकर हमारी सारी बातें सुनी थीं। हमने सभी सदस्यों को सावधान किया था कि वे वर्मा पर कड़ी नजर रखें और उसके किसी जाल में न फँसें। आखिर वर्मा ने आज अपना काम शुरू कर दिया। वह यह कागज लेकर सबसे पहले हनुमान के पास पहुँचा। उसका ख्याल होगा कि हनुमान एकदम बुद्धू है, वे तुरंत कागज पर अपने अँगूठे का निशान लगा देंगे। फिर तो, चूँकि हनुमान को सभी वर्कर बहुत मानते हैं, उसका काम आसान हो जायगा और वर्कर उस कागज पर अपने दस्तखत कर देंगे। लेकिन वर्मा का पासा उलटा पड़ गया। यह कागज देखते ही हनुमान वैसे ही भड़क उठे, जैसे सांड लाल कपड़ा देखकर भड़क उठता है और उन्होंने कागज फाड़कर वर्मा को झापड़ रसीद कर दिया।'

'यह तो खूब कहानी गढ़ी है आप लोगों ने!' मालिक ने नाक व आँखों पर से अँगुलियाँ हटाकर मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा।

'यह हमारी गढ़ी हुई कहानी नहीं, आपकी जालसाजी का कच्चा

चिट्ठा है !' सेक्रेटरी ने कहा, 'लेकिन आपने यह न सोचा होगा कि आपकी जालसाजी का यह अत होगा ।'

'अच्छा, पहले वह गेट पर की नारेबाजी वद करवाइये !' मालिक ने कहा, 'उनसे कहिये, हम बात कर रहे हैं ।'

'वह नारेबाजी नही, हमारी जिंदगी की पुकार है ?' सेक्रेटरी ने कहा, 'आप हनुमान को तुरत बहाल कीजिये, वर्ना हम अभी से हड़ताल करने के लिए मजबूर होंगे !'

मालिक की अँगुलियाँ फिर नाक के बाँसे पर पहुँच गयी। वह बोला, 'अभी मैंने उसे गेट पर बैठाया है, कोई चार्जशीट तो दी नही है । जब उसे चार्जशीट मिलेगी, आप लोग उसका जवाब दीजियेगा। फिर उस पर विचार किया जायेगा ··'

रहने दीजिये यह सब !' सेक्रेटरी ने उठते हुए कहा, 'यह सब हमने बहुत देखा है ! आप हमारी यह आखिरी बात सुन लीजिये ! आपने हनुमान को कोई भी नुकसान पहुँचाया, तो उसका नतीजा आपके लिए बहुत बुरा होगा !'

कहकर सेक्रेटरी ने मेरा हाथ पकड़ा और हम दोनो कमरे से बाहर निकल आये। दरवाजा वद हो गया, तो सेक्रेटरी ने मुझसे कहा, 'मैं फाटक पर जा रहा हूँ। आप यूनियन की ओर से एक पत्र लिखकर मालिक को दे दें कि जब तक हनुमान को बहाल नही किया जायेगा, कोई भी वर्कर काम पर नही जायेगा ।'

'ठीक है', मैंने कहा, 'सुना है, मालिक ने सिक्योरिटी अफसर को थाने भेजा है। अगर पुलिस आये तो मुझे बताइयेगा। यो भी आप लोग सावधान रहे ।'

'बहुत अच्छा', कहकर सेक्रेटरी फाटक की ओर चले गये ।

मैं अपनी कुर्सी पर बैठकर पत्र लिखने लगा। मेरा वह सहयोगी उत्तेजित था। उसने पूछा, 'क्या हुआ, सभापतिजी, साहब नही माने क्या ?'

'साहब लोग यो कोई बात थोड़े मान लेते है !' मैंने कहा, 'लेकिन वर्करो की एकता मजबूत बनी रहे, तो उनकी मनमानी नही चलती।'

करीब चालीस साल पहले की बात है। उन दिनों यह एक मामूली प्रेस था और एक कच्चे मकान में चल रहा था। एक मासिक पत्रिका निकलती थी और साल में दो-तीन छोटी छोटी किताबें निकल जाती थीं। मैं पत्रिका का काम सँभालता था और मेरे साथ एक प्रूफरीडर बैठता था। एक क्लर्क था, जो बाबूजी के साथ बैठता था। तीन कंपोजीटर थे और दो मशीन मैन, जिनमें एक सिलिंडर मशीन चलाता था और दूसरा ट्रेडिल मशीन और उनके साथ एक कुली था।

एक दिन कंपोजीटर मुन्नालाल एक लड़के का हाथ थामे मेरे पास आया और बोला, 'भैयाजी, आप बाबूजी से कहकर इस लड़के को रखवा दीजिये, दो साल पहले इसका बाप मर गया था। अकेली बेवा माँ मजदूरी करने चली जाती है और यह कोठरी में पड़ा रहता है। न बोलता-चालता है, न हँसता-रोता है। खाने को भी नहीं माँगता। कभी किसी लड़के के साथ खेलता भी नहीं। माँ परेशान है कि जाने इसे क्या हो गया है। आज उसने इसे मेरे साथ लगा दिया और चिरौरी की कि मैं इसे प्रेस में रखवा दूँ।'

लड़का एकदम मरियल था। मैला-कुचैला जाँघिया और गंजी पहने था। सूखी देह पर मैल जमी थी। बाल बड़े-बड़े और चीकट थे। आँखें पीली-पीली थीं। यदि जान थी, तो उसके मोटे-मोटे होंठों में, जिनके बीच में एक अजीब तरह की मुस्कान की रेखा खिंची हुई थी।

मैंने कहा, 'यह तो अभी एकदम बच्चा और बहुत कमजोर है। यह यहाँ क्या करेगा?'

'अभी झाड़-पोंछ करेगा', मुन्नालाल ने कहा, 'फिर मैं इसे कंपोज करना सिखा दूँगा। यहाँ इसका मन बहलेगा, तो यह ठीक हो जायेगा।'

मैंने बाबूजी से कह दिया और उन्होंने लड़के पर तरस खाकर उसे रख लिया।

लेकिन लड़के के आचरण में कोई फर्क नहीं पड़ा। मुन्नालाल ने उसे अक्षर सिखाने की बहुत कोशिश की। लेकिन उसने नहीं सीखा। उसका शरीर तो ठीक हो गया, लेकिन मानसिक विकास जहाँ-का-तहाँ रुका रहा। वह किसी को भी पहचानता नहीं था। किसी का नाम क्या, वह अपना नाम भी नहीं जानता था। किसी से भी कोई बात न करता था। कुछ पूछने पर

भी कोई जवाब न देता था। यहाँ तक कि वह सिक्के या नोट को भी न पहचानता। गिनती भी न जानता था।

कैशियर उसे तनखाह देकर कहता, 'गिनकर देख लो, पूरे है न ?'

वह नोट मुट्ठी मे दबाकर चलने लगता, तो कैशियर हँसकर कहता, 'अच्छा यह नोट भी ले लो, बदरराज ! तुम्हारे जैसे आदमी के साथ तो बेई-मानी भी नही की जा सकती !'

उसके करीब पंद्रह साल बाद प्रेस नयी इमारत मे आ गया था। वह अब बहुत बडा हो गया था। चार-चार नयी मशीने लग गयी थी। दो-दो मोनो मशीनें आ गयी थी। सौ से ऊपर लोग काम करते थे। तीन-तीन पत्रिकाएँ निकलती थी। सुखलाल बड़ी मेहनत करके हनुमान को सिर्फ प्रूफ उठाना सिखा सका था। हनुमान प्रूफ उठाते और प्रूफरीडरों या सपादकों के पास पहुँचाते। उन्हें यह मालूम न था कि कौन प्रूफ किस प्रूफरीडर या सपादक के पास पहुँचाना चाहिए। वे सारे प्रूफ ले जाकर दरवाजे के पास बैठे प्रूफरीडर की मेज पर रख देते। प्रूफरीडर उनमे से अपने प्रूफ निकालकर शेष प्रूफ उनके हाथ मे थमाकर कह देता, 'अब उनके पास ले जाइये।'

दूसरा प्रूफरीडर भी उसी प्रकार अपने प्रूफ छाँटकर शेष प्रूफ उनके हाथ मे देकर कहता, 'इन्हे उनके पास ले जाइये।'

फिर तीसरा प्रूफरीडर अपने प्रूफ निकालकर शेष प्रूफ उनके हाथ मे देकर कहता, 'ये फाइनल प्रूफ हैं, इन्हें आप संपादकीय विभाग मे ले जाये।'

तब हनुमान सपादकीय विभाग मे पहुँचते और हाथ के सारे प्रूफ दरवाजे के पास बैठे सपादक की मेज पर ही रख देते।

यहाँ संपादक लोग प्राय. रोज ही उनके साथ कोई-न-कोई परिहास करते। एक दिन शुक्लाजी ने अपने प्रूफ निकालकर उनसे कहा, 'अब इन प्रूफों को आप अग्रवालजी के पास ले जाइये।'

हनुमान प्रूफ लेकर उनका मुँह ताकने लगे, तो शुक्लाजी हँसकर बोले, 'आप कैसे हनुमानजी हैं, जो इतने दिन एक साथ काम करते रहने पर भी हममे से किसी को भी नही पहचानते, जबकि एक वह हनुमानजी थे, जिन्होंने अशोकवाटिका में उन सीताजी को तुरंत पहचान लिया था, जिन्हें

उन्होंने एक बार भी न देखा था, और उनके पास राम की मुद्रिका गिरा दी थी!'

'वे सतयुगी थे ये कलयुगी हैं।' अग्रवालजी बोल पड़े। सब जोर से हँस पड़े, लेकिन हनुमान अप्रभावित चुपचाप खड़े रहे।

एक दिन तो संपादकीय विभाग में एक अजीब दृश्य उपस्थित हो गया। दोपहर को खाने की छुट्टी होने के दस मिनट पहले हनुमान प्रूफ लेकर आये, तो उन्हें देखते ही श्यामजी उठ खड़े हुए और उन्होंने हनुमान के सारे प्रूफ लेकर कहा, 'आप जरा हाथ-मुँह धोकर तो आइये!'

हनुमान हाथ-मुँह धोकर चेहरे और हाथों से पानी चलाते आ खड़े हुए, तो श्यामजी ने अपनी कुर्सी की ओर हाथ से इशारा कर कहा, 'इस पर बैठिये।'

हनुमान बैठ गये तो श्यामजी ने झोले से मिठाइयों का एक बड़ा डिब्बा निकाला और उसका ढक्कन खोलकर, उसे उनके सामने रखकर कहा, 'भोग लगाइये।'

हनुमान सिर झुकाकर चुपचाप मिठाई खाने लगे। वे मिठाई तोड़कर नहीं, पूरी-पूरी मिठाई मुँह में डाल रहे थे।

हनुमान संपादकीय विभाग में मिठाई खा रहे हैं, यह बात जाने कैसे पूरे प्रेस में फैल गयी। फिर क्या था, सभी वर्कर काम छोड़-छोड़कर संपादकीय विभाग में आ गये और हनुमान का मिठाई खाना देखने लगे। लेकिन हनुमान सिर्फ मिठाई की ओर देख रहे थे और खाते जा रहे थे। वर्करों ने श्यामजी से पूछा, 'क्या बात है कि आप...?'

'कुछ नहीं, अपनी श्रद्धा है' श्यामजी ने कहा, 'लोग पत्थर के हनुमान जी को लड्डू चढ़ाते हैं, मैंने जीवित हनुमानजी को मिठाई चढ़ायी है!'

सारी मिठाइयाँ खाकर हनुमान उठे और बेसिन पर पानी पीने चले गये। बाद में जब साथियों ने बहुत इसरार किया तो आखिर श्यामजी ने बताया, 'एक के बाद एक मेरे तीन बेटियाँ हो चुकी थीं। सारा परिवार बड़ा परेशान था। इस बार मेरी पत्नी गर्भवती हुई, तो जाने मेरे मन में क्या आया कि एक दिन मैं प्रेस में हनुमान के पास जा खड़ा हुआ। वे प्रूफ उठा रहे थे। उन्होंने मेरी ओर देखा भी नहीं। मैं उनकी ओर देखता रहा।

इस अंधकार का कवि हूँ (कविता संग्रह : 1951)
(कविता संग्रह : 1974)

जब वे सारे प्रूफ उठा चुके और उन्हें लेकर चलने को हुए तो मुझे सामने खड़े पाकर ठिठक गये। तभी मैंने उनसे पूछ लिया, इस बार तो मेरे बेटा होगा? सुनकर उन्होंने अनायास हाँ में सिर हिला दिया और मेरी बगल से निकल गये।···आप लोगों को यह जानकर खुशी होगी कि कल रात मेरी पत्नी ने एक बेटे को जन्म दिया।'

जब यह बात प्रेस में फैली, तो वर्कर हनुमान को एक दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे। पहले वर्कर उनकी असीम निरीहता पर तरस खाकर उन्हें मानते थे। लेकिन अब तो वे सहसा ही उनके लिए पूज्य बन गये। वे प्रेस में आते तो सबसे पहले उनके पाँव छूते। लेकिन हनुमान में कोई अंतर न आया। वे दिन-भर भूत की तरह प्रूफ उठाते और पहुँचाते रहे। हाँ, अब उन्हें मेज-मेज पर जाकर प्रूफ न देने पड़ते, प्रूफरीडर और संपादक खुद उठकर उनके हाथ से प्रूफ लेकर अपना-अपना छाँट लेते।

बाबूजी भी जब प्रेस में आते हनुमान से जरूर उनका समाचार पूछते। हनुमान कुछ न बोलते तो बाबूजी कहते, 'धन्य हैं आप! इस संसार में आप क्या करने आये?'

बाबूजी ने अपने जीवन में कष्ट झेले थे और कड़े संघर्ष किये थे। वे कई-कई बार असफल होने के बाद सफल हुए थे। इसीलिए वे वर्करों का सम्मान करते थे और उनके सुख-दुख में बराबर शामिल रहते थे। वे जाड़ों में वर्करों को कपड़े देते थे, त्यौहारों पर बख्शीश देते थे, जरूरत पड़ने पर मदद करते थे। बराबर मजदूरी बढ़ाते रहते थे और हर दीपावली पर बोनस और मिठाई देते थे। वे वर्करों को भाई कहकर संबोधित करते थे, और कभी भी कोई कड़ी बात मुँह से न निकालते थे। स्वतंत्रता-दिवस पर वे सहभोज का आयोजन करते थे। सारी व्यवस्था खुद वर्कर करते थे और बाबूजी अपने परिवार के साथ उनकी पाँत में बैठकर भोजन करते थे और उनकी गवनई सुनते थे। लगता था, सब एक ही परिवार के सदस्य हैं।

लेकिन बाबूजी के भाग्य में अपनी अर्जित संपदा का सुख भोगना न लिखा था। प्रेस, कोठी, कार, सब कुछ हो जाने पर एक दिन अचानक

हृदय की गति रुक जाने से वे चल बसे।

उनके बाद उनके बड़े बेटे ने उनकी कुर्सी संभाली। वे उसी साल यूनिवर्सिटी से एल-एल० बी० करके निकले थे। इतनी भारी संपदा और पिता के जीवन-बीमा के दस लाख रुपये के मालिक बनते ही वे इतरा गये। उन्होंने हजारों रुपये खर्च कर अपने बैठने के लिए बढ़िया चैंबर बनवाया। फाटक पर चौकीदार, टाइमकीपर और सिक्योरिटी अफसर तैनात किये। हर सेक्शन के लिए सुपरवाइजर नियुक्त किये। पुरानी मशीनें औने-पौने में बेचकर नयी मशीनें लगायीं। और सबके ऊपर वर्करों के लिए एक ही साथ कई आदेश नोटिस बोर्ड पर चिपकवा दिये। जैसे—हर वर्कर पंद्रह मिनट पहले अपनी ड्यूटी पर प्रेस में आ जाये, जो वर्कर एक मिनट भी देर से आयेगा, उसे गेट के अंदर घुसने नहीं दिया जायेगा और उसकी एक दिन की मजदूरी काट ली जायेगी। ड्यूटी के दौरान कोई भी वर्कर गेट के बाहर नहीं जायेगा, सख्त जरूरत होने पर वह गेट-पास लेकर अधिक-से-अधिक दस मिनट के लिए बाहर जा सकेगा, लेकिन एक मिनट भी देर से लौटेगा, तो उसकी एक दिन की मजदूरी काट ली जायेगी। किसी भी वर्कर को कोई छुट्टी लेनी हो, तो उसकी दरखास्त दो दिन पहले आ जानी चाहिए और उसे मालूम कर लेना चाहिए कि उसकी छुट्टी मंजूर हुई या नहीं, बिना छुट्टी मंजूर हुए कोई वर्कर गैरहाजिर रहेगा, तो उसकी मजदूरी काट ली जायेगी और दूसरी अनुशासनात्मक कार्रवाई भी की जायेगी। कोई भी वर्कर प्रेस के अहाते के अंदर कहीं भी बीड़ी या सिगरेट नहीं पियेगा। हर वर्कर अपनी डायरी में रोज का काम भरेगा, हर वर्कर गेट पर तलाशी के समय अपने खाने का डिब्बा या पोटली भी खोलकर दिखायेगा। हर वर्कर मिलने आनेवाले से गेट पर चौकीदार के सामने ही बात करेगा और पाँच मिनट से ज्यादा बात नहीं करेगा। कोई वर्कर ओवरटाइम करने से इनकार नहीं करेगा, आदि-आदि।

ये सब हुक्मनामे देखकर वर्कर एकदम से बौखला उठे। उन्हें लगा कि यह साहब का बच्चा तो उनका नातका ही बंद कर देना चाहता है। फिर वर्करों में बातें हुईं और पहली बार प्रेस वर्करों की यूनियन बनी और यूनियन की तरफ से ये माँगें रखी गयीं—इधर जारी किये गये सभी निर्दे

वापस लिए जायें, क्योंकि ये सभी प्रेस मे चली आ रही पैंतीस वर्षों की परिपाटी के विरुद्ध है। बीडी-सिगरेट पीने के लिए और दोपहर को खाने के लिए जगह की व्यवस्था की जाये। जब तक इन जगहों की व्यवस्था नही होती, वर्कर हमेशा की तरह बंबे के पास बीडी-सिगरेट पीते रहेंगे और जहाँ खाना खाते हैं, वही खाते रहेगे। फैक्टरी ऐक्ट के अनुसार छुट्टियाँ दी जायें। आकस्मिक छुट्टी और बीमारी की छुट्टी के लिए दो दिन पहले दरखास्त नही दी जा सकती, क्योंकि आकस्मिक छुट्टी अचानक जरूरत पडने पर ली जाती है और बीमारी की छुट्टी बीमार पडने पर। ओवर-टाइम करने के लिए किसी भी वर्कर के साथ जबर्दस्ती न की जाये। ओवरटाइम की मजदूरी फैक्टरी ऐक्ट के अनुसार दी जाये। हर वर्कर की मजदूरी का ग्रेड निर्धारित किया जाये और महँगाई-भत्ता इडेक्स के अनुसार दिया जाये। आदि-आदि। और अंत मे चेतावनी दी गयी कि अगर किसी भी वर्कर के साथ कोई भी ज्यादती की गयी, तो उसके परिणाम की जिम्मेदारी मालिक पर होगी।

इस तरह मालिक और वर्करो के बीच संघर्ष शुरू हो गया। उसके बाद प्रायः हर वर्ष मालिक की बेईमानी, ज्यादती, मनमानी, दुराग्रह तथा अन्याय के विरुद्ध वर्करों को विवश होकर एक-एक, दो-दो या तीन-तीन बार हडतालें करनी पड़ी और लेबर ट्रिब्यूनल मे जाना पडा। जब मालिक को हर बार वर्करो की दृढ एकता के सामने मुँह की खानी पडी, तो उसने *यूनियन को ही तोड डालने की ठान ली।*

मैं अभी पत्र लिख ही रहा था कि चपरासी घबराया हुआ मेरे पास आकर बोला, 'पुलिस आ गयी ! दारोगा साहब के पास बैठा है और दो कांस्टेबल फाटक पर खड़े हैं।'

मैं अधूरा पत्र मेज की दराज मे रखकर, भागकर फाटक पर पहुँचा। फाटक पर कांस्टेबल पोजीशन लेकर खडे थे। उनके हाथों मे बंदूकें थी। की सड़क के दूसरी ओर के फुटपाथ के किनारे एक बेंच पर फाटक मुँह किये हनुमान बैठे थे। उनके गले में फूलो की मालाएँ पड़ी थी

हनुमान

बगल में खड़े होकर सेक्रेटरी सामने खड़े वर्करों को संबोधित कर रहे थे, ...तो इस तरह हमारी यूनियन ने आज तक हमारे न्यायपूर्ण अधिकारों की रक्षा की है। अब मालिक हमारी यूनियन को तोड़ने की तरह-तरह की साजिशें कर रहे हैं। आज प्रेस में जो हुआ है, आप सभी जानते हैं। हमारा ही एक साथी वर्मा प्रलोभन में पड़कर, मालिक के बहकावे या शिकार होकर यह कागज लेकर हमारे इन बाबा हनुमान के पास गया। उसका ख्याल होगा कि भोले बाबा को तो दीन-दुनिया की कोई खबर रहती नहीं, ये कुछ भी जानते-समझते नहीं, ये तुरंत कागज पर अपने अंगूठे का निशान लगा देंगे। फिर वह हमारे पास आयेगा और कहेगा, देखो, हनुमान ने यह नयी यूनियन बनाने की स्वीकृति दे दी है, तुम लोग भी इस पर दस्तखत कर दो। चूंकि हम हनुमान को देवता की तरह मानते हैं, इसलिए उसका ख्याल होगा कि हम हनुमान की मानी हुई बात को अस्वीकार नहीं कर सकेंगे। लेकिन शायद उसे या मालिक को भी इस बात का ज्ञान नहीं कि एक जानवर भी अपना हित-अहित समझता है। हमारे ये भोले बाबा तो, चाहे जो हो, एक इंसान हैं। इन्होंने वर्मा के हाथ से कागज लेकर उसके दो टुकड़े कर फेंक दिया और उसे एक झापड़ भी रसीद कर दिया, ताकि वह चेत जाये और ऐसी गलत हरकत फिर कभी न करे। लेकिन मालिक तो इस तरह अलफ हो उठे हैं, जैसे वह झापड़ वर्मा के नहीं, उन्हीं के लगा हो। उनकी चालबाजी नहीं चली, तो वे हमारी यूनियनबाजी देख रहे हैं। हमारे लिए जो काम यूनियन की रक्षा के लिए है, उनके लिए यूनियनबाजी है। हम जानते हैं कि उन्हें हमारी यूनियन से कितनी नफरत है, लेकिन हम उन्हें बताना चाहते हैं कि हमारी यूनियन हमें अपनी जान से भी प्यारी है और जब तक हमारी जान-में-जान है, हम यूनियन का बाल भी बांका न होने देंगे। आज हमारे हनुमान ने जो किया है उससे मालिक की आंखें खुल जानी चाहिए। अगर हनुमान जैसे निपट भोले आदमी अपनी यूनियन के लिए ऐसा काम कर सकते हैं, तो हम दूसरे वर्कर जिनमें कुछ चेतना आ गयी है अपनी यूनियन की सुरक्षा के लिए क्या नहीं कर सकते हैं? अंत में स्पष्ट शब्दों में मैं यह घोषणा करता हूं, मालिक कान खोलकर सुन लें कि जब तक हनुमान को प्रेस से बाहर रखा जायेगा, हम सभी वर्कर भी उन

साथ गेट से बाहर रहेंगे !···अब नारे लगाइये···हमारी यूनियन···'

'यूनियन जिंदाबाद' के बाद 'हनुमान जिंदाबाद' के नारे लगे। नारों के बाद सेक्रेटरी ने कहा, 'अब मैं यूनियन के सभापतिजी से निवेदन कर रहा हूँ कि वे कुछ बोलें।'

मैं हनुमान की बगल में जाकर खड़ा ही हुआ था कि चपरासी दौड़ा-दौड़ा मेरे पास आकर बोला, 'आपको और सेक्रेटरी साहब को साहब बुला रहे हैं।'

मैंने सेक्रेटरी की ओर देखा तो उन्होंने कहा, 'जैसा आप ठीक समझें।'

मैंने वर्करों से कहा, 'हमें मालिक ने शायद बात करने के लिए बुलाया है। हम जब तक लौटकर न आयें आप लोग शांत रहें।'

हम दोनों मालिक के कमरे में जाकर दारोगा के दाहिने कुर्सियों पर बैठ गये, तो मालिक ने दारोगा को हमारा परिचय दिया।

फिर दारोगा ने मुझसे पूछा, 'क्या मामला है? क्यों आप लोगों ने हल्ला-गुल्ला मचा रखा है?'

'इन्होंने एक वर्कर को गेट के बाहर कर दिया है···'

'नहीं!' बीच में ही मालिक बोल उठा, 'हमने उसे गेट के बाहर नहीं किया है, गेट पर बैठाया है।'

'लेकिन क्यों?' दारोगा ने पूछा।

'उसने प्रेस में एक पदाधिकारी को झापड़ मारा है।'

'यह तो बड़ी गलत बात है!' दारोगा ने कहा, 'आप उस पदाधिकारी को बुलाइये, मैं उसका बयान लूँगा।'

'वह इन लोगों के डर से घर चला गया।'

'तब मैं क्या करूँ?'

'आप इन लोगों से पूछिये। ये सेक्रेटरी साहब तो वारदात के समय प्रेस में थे।'

'इनसे मैं क्या पूछूँ?' दारोगा ने कहा, 'मुद्दई के बयान के पहले ही कहीं गवाह का बयान होता है?'

'लेकिन मैं आपको सब बातें सच-सच बता सकता हूँ', सेक्रेटरी ने 'ये हमारी यूनियन को तोड़ने के लिए···'

हनुमान

'हमारा वक्त आप जाया न करें !' दारोगा ने कहा और फिर मालिक से पूछा, 'क्या उस वर्कर ने पहले भी किसी को मारा-पीटा था ?'

'नहीं', मालिक ने बताया, 'उसने ऐसी हरकत पहली बार की है।'

'तो फिर, मेरी राय से आप ऐसा कीजिये', दारोगा ने कहा, 'आप इस बार उस वर्कर को चेतावनी देकर माफ कर दीजिये।'

'हम चाहते थे कि इंक्वायरी . .'

'छोड़िये वह सब', दारोगा ने कहा, 'मैं नहीं चाहता कि प्रेस बंद रहे और आपका नुकसान हो।'

लेकिन अनुशासन...'

चेतावनी देना भी तो अनुशासन की ही कार्रवाई है', कहकर दारोगा हमारी ओर मुखातिब हुआ, 'जाइये साहब, आप लोग काम कीजिये।'

ये तो अपने मुंह से कहें, सेक्रेटरी ने कहा, 'और आप इन्हें भी चेतावनी दे दें कि ये हमारी यूनियन को तोड़ने का मंसूबा तर्क कर दें।'

ठीक है।' मालिक दारोगा से पहले ही बोल उठा, 'जब आप कहते हैं . .'

मशीनों के चलने की आवाजें आने लगीं। तभी चपरासी ने मेरे पास आकर कहा, वह चला गया।'

कौन ?' मैंने पूछा।

दारोगा। चपरासी ने बताया, पांच सौ रुपये इस बार भी ले गया। साहब ने मुझसे ही कैशियर के पास से मंगाये। उन्होंने मेरे हाथ कैशियर के पास जो चिट भेजी थी उस पर लिखा था—वर्कर्स वेलफेयर फंड से पांच सौ रुपये। पिछली बार साहब ने अपने बंगले पर जो कॉकटेल पार्टी की थी, उसके लिए भी वे इसी फंड से आठ हजार रुपये ले गये थे, आपको मालूम है ?'

सब मालूम है, मैंने कहा। 'वे वर्करों के कल्याण के लिए इतना खर्च करते हैं तभी तो वे हमारी यूनियन को तोड़कर वर्कर्स वेलफेयर यूनियन बनाना चाहते हैं।' ●

[illegible] (कविता संग्रह : 1981)
[illegible] (कविता संग्रह : 1984)
[illegible]

हड़ताल

प्रान बाबू उस समय इतने जोश और खुशी में थे कि उन्हें देखकर सभी लोग चकित थे। लोग उनकी हर हरकत और हर बात को चकित हो-होकर देख-सुन रहे थे। किंतु प्रान बाबू को अपनी अस्वाभाविक हरकतों और बातों का जैसे कोई होश ही न था। वह तो अपनी ही खुशी और जोश में मस्त थे। उनकी कमजोर टाँगों में जाने कहाँ-कहाँ की ताकत आ गयी थी कि वह तनिक-तनिक देर में इस मेज से उस मेज और उस मेज से इस मेज पर तुल-तुल चलकर पहुंच जाते। बड़ी गर्मजोशी के साथ मेज पर बैठे हुए लोगों से हाथ मिलाते और अपनी बात शुरू कर देते। उनकी गूंगी जबान आज जैसे कैंची की तरह चल रही थी। उनके सूखे चेहरे पर एक अजीब रौनक थी और उनकी निस्तेज, गड्ढों में धँसी हुई नम आँखों में एक अजीब चमक थी।

इधर बहुत दिनों से प्रान बाबू कॉफी हाउस तो आते थे, लेकिन कॉफी न पीते थे। कोई पूछता तो अजीब-सा दयनीय मुँह बनाकर वह देते, 'धन्यवाद, मन नहीं कर रहा है।' किंतु आज कोई पूछता तो वह झट बड़े उत्साह के साथ हँसते हुए कहते, 'क्यों न पीऊँगा! जरूर पीऊँगा, मँगाइये! हाँ, तो एक सिगरेट भी दीजिये!'

कदाचित उनकी खुशी और जोश का मजा लेने के लिए ही हैरत में पड़े हुए कई लोग एक साथ ही उनकी ओर अपना-अपना पैकेट बढ़ा देते। तब प्रान बाबू एक के पैकेट से एक सिगरेट निकालते हुए दूसरों को आश्वस्त करने की गरज से कहते, 'इनकी पी लूँ, फिर आप लोगों की भी पिऊँगा···! धन्यवाद ! धन्यवाद !'

और सिगरेट जलाकर इतने जोर से कश लेने लगते, जैसे वह सिगरेट नहीं, गाँजे का दम लगा रहे हों। पाँच-सात कश में ही वह एक सिगरेट खत्म कर दूसरी जला लेते। यही हाल कॉफी का भी था। कॉफी आते ही वह उठा लेते और उसे ऐसे गटक जाते, जैसे वह गर्म कॉफी न होकर ठंडा पानी हो। वह आज कितनी बार कॉफी गटक चुके थे और कितनी सिगरेटें फूँक चुके थे, इसका कोई हिसाब नहीं था।

इधर बहुत दिनों से उन्होंने जैसे अपना मुँह सी रखा था। कभी किसी ने औपचारिकतावश कुशल समाचार पूछ ही लिया तो वह जैसे बड़ी मुश्किल से अपने मुँह का एक टाँका खोलते और सिर झुकाये हुए ही भुन से 'ठीक है' कहकर अपने मुँह का टाँका दुरुस्त कर लेते। इसी कारण कदाचित लोग उन पर दया करते और उनसे कोई बात न करते। लेकिन आज वह मेज पर आते ही लोगों की ओर हाथ बढ़ाते हुए मुँह फाड़कर बोल पड़ते, 'हमारे कार्यालय में तो मुकम्मल हड़ताल हो गयी।'

लोग हैरत से उनका मुँह ताकने लगते तो वह हँसकर कहते, 'आप लोग मेरा मुँह क्या ताक रहे हैं? मैं पक्की बात कह रहा हूँ। अपनी आँखों से ही देखकर आया हूँ।'

'तो आप अपने कार्यालय गये थे?' कोई पूछ लेता।

'गया नहीं था तो क्या मैं कोई झूठ बोल रहा हूँ?' बड़ी दबंगई से वह जवाब देते।

'नहीं-नहीं', कोई बात को संभालता, 'इसका मतलब यह था कि जब हड़ताल में शामिल होना ही था तो आपको अपने कार्यालय जाने की क्या जरूरत थी?'

'क्यों-क्यों नहीं?' पटाखे की-सी आवाज में प्रान बाबू बोल पड़ते, '[illegible] हम लोग न जाते तो गद्दारों का मुँह काला कौन [illegible]

[illegible]

करता ?'

'अच्छा-अच्छा ! तो आपके कार्यालय में गद्दार हैं क्या ?' कोई पूछ बैठता।

'गद्दार कहाँ नही हैं ?' प्रान बाबू नाक चढ़ाकर फट पड़ते, 'लेकिन हमे देखकर गद्दारो का साहस छूट गया। वे भाग खड़े हुए और हमारे यहाँ मुकम्मल हड़ताल हो गयी।'

'हमने तो सुना है कि आपके कार्यालय पर पुलिस ने बड़ी गिरफ्तारियाँ की हैं।' कोई कहता।

'हाँ', प्रान बाबू तपाक से कहते, 'काफी गिरफ्तारियाँ हुई है। हमारे भ्रातृमंडल के प्राय. सभी नेता गिरफ्तार कर लिए गये है। अफसरों ने खुद दौड-दौड़कर नेताओ को पहचनवाया और पुलिस से गिरफ्तार करवाया है। लेकिन इससे क्या ? हड़ताल हमारे यहाँ मुकम्मल है। कोई भी कार्यालय नही गया, इतना मैं ताल ठोककर कहता हूँ। अब आप अपने कार्यालय का हाल बताइये ?'

'इनके यहा तो हड़ताल आशिक ही मालूम होती है।' कोई इनकी ओर से आँखे बचाकर बताता।

'क्यो ?' प्रान बाबू जैसे बिगडकर पूछते, 'ऐसा क्यो हुआ ? आप लोगों ने गद्दारों को कार्यालय मे क्यो घुसने दिया ?'

उन्हें पुलिस की सुरक्षा प्राप्त थी।' वह बताता, 'इन लोगों ने गद्दारों को रोकने की कोशिश की तो पुलिस ने झट गोलियाँ चला दी !'

'गोलियाँ चला दी ?' प्रान बाबू जैसे आँखे बाहर निकालकर पूछते।

'आपको नही मालूम ?' वह बताता, 'शायद एक-दो आदमी मरे भी है, घायल तो कई हुए हैं।'

'और आप लोग यहाँ...बडे अफसोस की बात है...'

और प्रान बाबू ललकारकर कहते, 'पुलिस ने अगर हमारे यहाँ गोलियाँ चलायी होती तो हम...हम...अब हम आपको क्या बतायें।'

'आप लोगो का भ्रातृमडल बहुत ही शक्तिशाली है।' वह बेचारा जैसे शर्मिदा होकर कहता।

'लेकिन', तभी कोई दूसरा कह पडता, 'हमने तो सुना है कि इनके यहाँ

कितने ही लोग छुपकर अपनी हाजिरी के दस्तखत बना रहे हैं और रात तक रजिस्टर खुला रहेगा ताकि लोग आयें और अपनी हाजिरी के दस्तखत बना जायें।'

'यह झूठ है। बिल्कुल झूठ है।' प्रान बाबू मेज पर घूंसा मारकर कहते, 'ऐसा नहीं हो सकता। हरगिज नहीं हो सकता। अफसरों ने यह अफवाह भ्रातृमंडल में फूट डालने के लिए उड़ायी होगी। लेकिन इस अफवाह से हमारे यहाँ कोई भी धोखा खाने वाला नहीं है। हमारा भ्रातृमंडल चट्टान की तरह ठोस और मजबूत है।'

हो सकता है, आप ठीक कहते हों।' वह कहता, 'मैंने तो जो बात सुनी है, कह दी है।'

'आप लोग ऐसी अफवाहों से गुमराह न हों।' प्रान बाबू तब और भी जोश में आकर कहते, 'हमारे यहाँ हड़ताल शतप्रतिशत सफल हुई है और सभी जगहों पर भी हड़ताल अवश्य सफल हुई होगी। जहाँ पुलिस के जुल्म से हड़ताल पूरी तरह सफल न हुई हो, वहाँ भी हम हड़ताल को सफल ही मानेंगे। आज हमारे देश के बाबू वर्ग ने जिस अद्भुत साहस का प्रदर्शन किया है, वह हमारे देश के इतिहास में अभूतपूर्व है···और मैं कहता हूँ कि क्रान्ति अब दूर नहीं है। हमारे दुखों का अंत निकट है···हूँ! सरकार सोचती थी कि हम अध्यादेशों से डरा देगी। हमें देखना है कि अब वह कितने हजारों-लाखों कर्मचारियों के विरुद्ध कार्रवाई करती है। जब तक हमारी माँगों को स्वीकार नहीं करती। मैं कहता हूँ कि अगर अब भी सरकार के होश ठिकाने न आये तो फिर यह हड़ताल होगी, वह हड़ताल होगी कि सरकार का तख्ता उलट जायेगा···'

उस दिन दोपहर से रात के आठ बजे तक कॉफी हाउस में प्रान बाबू की यही वक्तृताएँ गूँजती रहीं। इस बीच कितने ही लोग आये और गये, लेकिन प्रान बाबू जमे रहे, जमे रहे और अपनी खुशी, जोश और वक्तृताओं से लोगों को भाव-विभोर करते रहे।

प्रान बाबू, कॉफी हाउस आने-जाने वालों की मंझली पीढ़ी के सदस्य आज

कोई विश्वास नहीं करेगा, लेकिन यह बिल्कुल सच है कि एक जमाने में प्रान बाबू को लिखने-पढ़ने का शौक था और इसी नाते वह बराबर पेशे से एक क्लर्क होते हुए भी, कॉफी हाउस आते थे और साहित्यकारों, पत्रकारों और विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों की मेजों पर बैठते थे। बहसों में अधिक हिस्सा न लेते हुए भी वह उनमें गहरी दिलचस्पी रखते थे और जो बात उन्हें कहनी होती थी, उसे बड़ी निर्भीकता से सपाट शब्दों में कह देते थे। वह बड़े ही सीधे, नम्र और स्पष्ट वक्ता थे, इसी कारण लोग उन्हें, उनके क्लर्क होते हुए भी, अपनी मेजों पर नापसद न करते थे।

उनकी इस खूबी के कारण ही कॉफी हाउस के उनके सभी मित्रों को उनके विषय में सब कुछ ज्ञात था, उन्हें यह ज्ञात था कि प्रान बाबू अपने पेशे में कोई तरक्की इस कारण न कर पाये, क्योंकि वह अपने पेशे को निहायत कमीना पेशा मानते थे। और हमेशा इस प्रयत्न में रहते थे कि साहित्य में कुछ जम पायें तो इस पेशे को लात मार दें। उन्हें यह ज्ञात था कि प्रान बाबू साहित्य में इस कारण न जम सके क्योंकि उन्हें अपने पेशे के कारण साहित्य में काम करने का अवकाश ही न मिलता था। उन्हें यह ज्ञात था कि इसी कशमकश के बीच, पद्रह-बीस बरसों में उन्होंने पाँच लड़कियाँ और दो लड़के पैदा कर लिए और बिल्कुल टूट गये। उन्हें यह ज्ञात था कि इस टूटन के बाद प्रान बाबू क्लर्की और साहित्य, दोनों को समान रूप से गालियाँ देने लगे और साहित्य को इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि वह क्लर्की न छोड़ सके और क्लर्की को इस कारण न छोड़ सके क्योंकि उनके एक अदद बीवी और सात अदद बच्चे थे। उन्हें यह ज्ञात था कि प्रान बाबू के इस निर्णय के बाद उनके सामने केवल उनका जीवन-संघर्ष शेष रह गया और इस संघर्ष के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता थी, उसे वे ठर्रे का सेवन करके प्राप्त करने लगे।

उन्हें यह भी ज्ञात था कि जब ठर्रे का परिमाण बहुत बढ़ जाने से प्रान बाबू के घर की विपन्नता बहुत अधिक बढ़ गयी तो उन्होंने ठर्रे को लात मारी और भंग के गोले का सेवन करने लगे—सस्ता और बालानशीं! उन्हें यह ज्ञात था कि इस स्थिति को पहुँचते-पहुँचते प्रान बाबू पक्के औलिया बन गये। उन्हें न तो अपने तन की सुध रही, न मन की। न

कपडे की, न जूते की। न मेजों की, न मित्रों की। उन्होंने अपने मुँह को सी लिया और कॉफी पीना बंद कर दिया, सिगरेट पीना बंद कर दिया, क्योंकि अब नशे के राजा से उनकी दोस्ती हो गयी थी। उन्हें यह ज्ञात था कि फिर भी प्रान बाबू ने कॉफी हाउस आना बंद न किया लेकिन उन्हें यह एक बात ज्ञात न हो सकी कि इस स्थिति में भी प्रान बाबू ने कॉफी हाउस आना क्यों बंद न किया, क्योंकि अब उन्होंने अपने मुँह को सी लिया था, अब वह कुछ बोलते ही न थे।

ऐसे प्रान बाबू सबको चकित करके जब कॉफी हाउस से निकलकर बाहर आये तो स्वभावतः उनकी चाल में भी अंतर आ ही गया था। और दिनों की तरह डगमगाते हुए चलने की जगह आज वह बिल्कुल ठीक तरह चल रहे थे। और तेज भी चल रहे थे। उनकी कुछ झुकी हुई पीठ आज सीधी दिखायी दे रही थी। गड्ढों में डूबी गीली-गीली आँखों की मुँदी-मुँदी सी रहने वाली पलकें आज पूरी तरह खुली हुई थीं। उनका ठिगना कद लम्बा सा दिखायी दे रहा था। सिले हुए-से रहने वाले होंठ आज कुछ खुले-खुले थे और उन पर मुसकराहट भी आ-जा रही थी। और वे हिल भी रहे थे। पहले सड़क पर चलते समय वह इधर-उधर बिल्कुल न देखते थे, लेकिन आज वह जान-बूझकर अपने चारों ओर देखते हुए चल रहे थे और कोई परिचित दिखायी पड़ जाता था तो दौड़कर उससे हाथ मिलाते थे और हँसकर भी बात करते थे। किसी के तो वह गले भी लिपट जाते थे।

यों मिलते-मिलाते प्रान बाबू बाजार से आगे निकल आये तो अचानक ही सुनसान अँधेरी सड़क पर उन्हें एक धक्का-सा लगा और उन्हें अब याद आया कि आज शाम को मैंने गोला तो लिया ही नहीं। यह याद आना था कि उनके पाँव भंग की दुकान की ओर मुड़ गये। लेकिन जरा दूर जाकर ही वह ठिठक गये और कुछ सोचने लगे। उन्हें अचानक ही यह ख्याल आया कि गोला लेने के बाद न तो मैं किसी से ठीक तरह से मिल सकूँगा और न बातें ही कर सकूँगा। अभी तो मुझे अपनी बीबी से मिलना है, बच्चों से मिलना है और उनके साथ बातें करनी है। फिर आज गोले की जरूरत भी क्या है? आज तो अपने ही आप मन मौज में है और उन्होंने घर की ओर जाने वाली सड़क पकड़ ली।

दो मील पैदल चलकर वह अपने घर पहुँचे थे, लेकिन उन्हें थकावट बिल्कुल न थी। उनके जोश और खुशी में कोई भी कमी न आयी थी। उन्होंने पहले की तरह बेजान-से हाथों से बंद दरवाजे की जंजीर न बजायी बल्कि जानदार हाथों से जंजीर इतने जोर से बजायी कि अंदर उनकी पत्नी चौंक उठी और उन्होंने पुकारकर कहा, 'कौन है ? दया के बाबूजी घर में नहीं है।'

'अरे भाई, दरवाजा खोलो', खनकती हुई आवाज में मुसकराते हुए प्रान बाबू बोले 'मैं हूँ। दया का बाबूजी।' यह दया के बाबूजी ही है, पत्नी को आश्वस्त हो जाना चाहिए था किंतु ऐसा न हुआ। वह और भी चौंक उठी। उनका माथा ठनक गया। आज यह कैसी आवाज है दया के बाबूजी की ! कभी उनकी ऐसी आवाज थी, अब तो उन्हें यह भी याद न था।

उन्होंने मन-ही-मन एक परेशानी का अनुभव करते हुए दरवाजा खोला ही था कि प्रान बाबू ने उन्हें अपने अंक में भर लिया और हँसते हुए बोले, 'जानेमन, हमारी हड़ताल सफल हो गयी है। अब तुम कोई चिंता मत करो ! हमें जल्दी ही हमारी आवश्यकता के अनुकूल वेतन मिलेगा। हमें अब कोई तंगी न रहेगी।'

पत्नी ने जबरदस्ती अपने को छुडाते हुए कहा, 'छोड़िये, यह क्या कर रहे हैं आप' लेकिन प्रान बाबू ने उन्हें न छोडा। वह उन्हें बेतहाशा चूमने लगे।

'बच्चे अभी सोये हैं···जाग जायेंगे···' हताश पत्नी ने कहा, 'छोड़िये, मैं दरवाजा बंद करूँ।'

उन्हें छोड़कर प्रान बाबू कमरे में आ गये। कमरे में फर्श पर सातों लड़के-लड़कियाँ एक कतार में सोये हुए थे। प्रान बाबू ने एक-एक कर उन्हें बड़े ध्यान से देखा और फिर उनके सिरहाने बैठकर एक-एक कर उनका सिर सहलाने लगे।

दरवाजा बंद कर पत्नी कमरे में आयी तो उन्हें लड़के-लड़कियों का सिर सहलाते हुए देखकर बोली, 'यह आप क्या कर रहे हैं ? उन्हें छोड़ दीजिये, वे जाग जायेंगे। जल्दी हाथ-मुँह धोकर खाना खा लीजिये तो मैं भी खा-पीकर आराम करूँ। दिन-भर की थकी-हारी हूँ। आज हड़ताल थी, फिर भी आपसे न हुआ कि जल्दी घर आ जायें।'

'मैं खाना नहीं खाऊँगा।' पत्नी की ओर मुसकराकर देखते हुए प्रान बाबू बोले, 'आज मैंने कई कप कॉफी पी है, बहुत-कुछ खाया भी है।'

'आपने कहाँ से खाया-पिया ?' विश्वास न करके पत्नी ने पूछा, 'आपके पास पैसा तो था नहीं।'

हँसकर प्रान बाबू बोले 'लोगों ने खिला-पिला दिया', दया की माँ माने ही नहीं। उन्होंने कहा, 'तुम जाओ, खा-पी लो।'

'झूठ तो नहीं कह रहे हैं न ?' पत्नी ने फिर भी विश्वास न करके कहा, 'खाना है, उठकर खा लीजिये।'

'नहीं, भाई, झूठ क्यों कहूँगा ?' जेब से कुछ पैसे निकालकर पत्नी को बढ़ाते हुए प्रान बाबू बोले, 'ये पैसे रख लो आज मैंने गोला भी नहीं लिया। जरूरत ही नहीं पड़ी ··इस तरह क्या देख रही हो ? जल्दी खा-पी लो। अब मैं आराम करूँगा।'

पत्नी रसोई की ओर चली गयी तो प्रान बाबू उन्हीं कपड़ों में एक किनारे सबसे छोटे बच्चे के पास लेट गये और उसकी देह पर भी धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे। अब वह चाहते थे कि उनका मन स्थिर हो जाये और वह सो जायँ उन्होंने कोशिश भी की, लेकिन उनका मन स्थिर न हो रहा था। उन्होंने सोचा कि अगर मैं किसी काम में अपने मन को लगाऊँ, तो शायद वह स्थिर हो जायेगा। लेकिन इस समय यहाँ कौन-सा काम रखा हुआ था ? यह सोचते हुए उठे और सबसे बड़े लड़के दयानन्द के पास, जो दूसरे किनारे सोया पड़ा था, गये। उसके सिरहाने कई किताबें और कापियाँ बेतरतीब पड़ी हुई थीं, वह किताबें और कापियाँ तरतीब से रखने लगे। तभी उनकी दृष्टि एक जासूसी उपन्यास पर पड़ी। वह उसे हाथ में लेकर देखने लगे। उन्हें गुस्सा आया कि सोटा फिर जासूसी उपन्यासों में दिमाग बरबाद करने लगा। इसी के लिए उन्होंने कितनी बार सोटे को डाँटा और पीटा था। लेकिन आज उनका यह गुस्सा क्षणिक ही रहा। बल्कि उन्होंने एक अजीब सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से सोटे को देखा और उपन्यास हाथ में लिए ही अपनी आँखें पर-भर लेटे।

वह उपन्यास खोलकर देखना शुरू करने वाले ही थे कि दरवाज़े से पड़ोस [illegible] बार-बार पुकार सुनायी पड़ी, 'प्रान बाबू, प्रान बाबू

हो क्या ?'

'हाँ-हाँ, कृपाल बाबू ! मैं हूँ, भाई हूँ, रुको, दरवाजा खोलता हूँ ।' बड़े उत्साह के साथ उठते हुए प्रान बाबू ने ललकारकर आवाज दी ।

उनकी इस समय ऐसी ललकार भरी आवाज सुनकर कृपाल बाबू चौंक उठे । उनका तो खयाल था कि इस समय प्रान बाबू गोले के प्रभाव से होश-हवाश खोये हुए पड़े होंगे ।

प्रान बाबू ने दरवाजा खोला और एकदम उनसे लिपट गये तो उनकी हालत खराब हो उठी । हकलाते हुए वह बोले, 'क्या बात है, प्रान बाबू, क्या बात है ? आप ···'

'अरे भाई', उनसे लिपटे हुए ही हँसते हुए प्रान बाबू बोले, 'बधाई ! बधाई ! हमारी हड़ताल शत-प्रतिशत सफल रही ।'

'नहीं प्रान बाबू', जैसे रोककर कृपाल बाबू बोले, 'हमारी हड़ताल···'

उन्हें छोड़कर प्रान बाबू अचकचाकर बोले, 'क्या कहते हो कृपाल बाबू, सुबह हमने अपनी आँखों से ही···'

'सुबह की बात ठीक है', कृपाल बाबू ने मुँह लटकाकर कहा, 'लेकिन भाई, बाद में लोग छुपकर रजिस्टर पर अपनी हाजिरी के दस्तखत बना आये हैं । इस समय भी दस्तखत बन रहे हैं । मुझे तो शाम को शंकर बाबू ने बताया कि ऐसा हो रहा है । मैंने जाकर देखा तो शंकर बाबू की बात ठीक निकली । क्या करता, मैं भी दस्तखत बनाकर अभी लौटा हूँ । भाई सोचा, पता नहीं तुमको मालूम है कि नहीं, सो चला आया तुम्हें बताने । साहब कहते थे, रात भर दस्तखत बनेंगे । भाई, तुम भी जाकर बना आओ ।'

सुनकर प्रान बाबू के दिल की धड़कन ही जैसे बंद हो गयी । उन्हें लगा कि अभी बैठ न गये तो गिर पड़ेंगे । वह माथे पर हाथ रखकर वहीं बैठ गये ।

'भाई, मुझे भी बड़ा अफसोस है ।' कृपाल बाबू ने उन्हें समझाते हुए कहा, 'लेकिन किया ही क्या जा सकता है ? जाओ···फिलहाल दस्तखत बना आओ, फिर देखेंगे···ठीक है न ?'

प्रान बाबू को जैसे कुछ भी सुनायी न दिया । वह जवाब क्या देते ?

'मैंने अभी खाना नहीं खाया है, बच्चे इंतजार कर रहे हैं । तो मैं चलूं

'मैं खाना नहीं खाऊँगा।' पत्नी की ओर मुसकराकर देखते हुए प्रान बाबू बोले, 'आज मैंने कई कप कॉफी पी है, बहुत-कुछ खाया भी है।'

'आपने कहाँ से खाया-पिया ?' विश्वास न करके पत्नी ने पूछा, 'आपके पास पैसा तो था नहीं।'

हँसकर प्रान बाबू बोले, 'लोगों ने खिला-पिला दिया', दया की माँ माने ही नहीं। उन्होंने कहा, 'तुम जाओ, खा-पी लो।'

'झूठ तो नहीं कह रहे हैं न ?' पत्नी ने फिर भी विश्वास न करके कहा, 'खाना है, उठकर खा लीजिये।'

'नहीं, भाई, झूठ क्यों कहूँगा ?' जेब से कुछ पैसे निकालकर पत्नी को बढ़ाते हुए प्रान बाबू बोले, 'ये पैसे रख लो आज मैंने गोला भी नहीं लिया। जरूरत ही नहीं पड़ी ··इस तरह क्या देख रही हो ? जल्दी खा-पी लो। अब मैं आराम करूँगा।'

पत्नी रसोई की ओर चली गयी तो प्रान बाबू उन्हीं कपड़ों में एक किनारे सबसे छोटे बच्चे के पास लेट गये और उसकी देह पर भी धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे। अब वह चाहते थे कि उनका मन स्थिर हो जाये और वह सो जायें, उन्होंने कोशिश भी की, लेकिन उनका मन स्थिर न हो रहा था। उन्होंने सोचा कि अगर मैं किसी काम में अपने मन को लगाऊँ, तो शायद वह स्थिर हो जायेगा। लेकिन इस समय वहाँ कौन-सा काम रखा हुआ था ? वह सोचते हुए उठे और सबसे बड़े लड़के दयानद के पास, जो दूसरे किनारे सोया पड़ा था, गये। उसके सिरहाने कई किताबें और कापियाँ बेतरतीब पड़ी हुई थी, वह किताबें और कापियाँ तरतीब से रखने लगे। तभी उनकी दृष्टि एक जासूसी उपन्यास पर पड़ी। वह उसे हाथ में लेकर देखने लगे। उन्हें गुस्सा आया कि लौंडा फिर जासूसी उपन्यासों में पैसा बरबाद करने लगा। इसी के लिए उन्होंने कितनी बार लौंडे को डाँटा और पीटा था। लेकिन आज उनका यह गुस्सा क्षणिक ही रहा। बल्कि उन्होंने एक अजीब सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से लौंडे को देखा और उपन्यास हाथ में लिए ही अपनी जगह पर आ लेटे।

वह उपन्यास खोलकर पढ़ना शुरू करने वाले ही थे कि दरवाजे से पड़ोस के कृपाल सिंह बाबू की पुकार सुनायी पड़ी, 'प्रान बाबू, प्रान बाबू,

मरघान (कविता संग्रह : 1984)

विश्वविद्यालय, सागर—470003

हो क्या ?'

'हाँ-हाँ, कृपाल बाबू ! मैं हूँ, भाई हूँ, रुको, दरवाजा खोलता हूँ ।' बड़े उत्साह के साथ उठते हुए प्रान बाबू ने ललकारकर आवाज दी ।

उनकी इस समय ऐसी ललकार भरी आवाज सुनकर कृपाल बाबू चौंक उठे । उनका तो खयाल था कि इस समय प्रान बाबू गोले के प्रभाव से होश-हवाश खोये हुए पड़े होंगे ।

प्रान बाबू ने दरवाजा खोला और एकदम उनसे लिपट गये तो उनकी हालत खराब हो उठी । हकलाते हुए वह बोले, 'क्या बात है, प्रान बाबू, क्या बात है ? आप ...'

अरे भाई', उनसे लिपटे हुए ही हँसते हुए प्रान बाबू बोले, 'बधाई ! बधाई ! हमारी हड़ताल शत-प्रतिशत सफल रही ।'

'नहीं प्रान बाबू', जैसे रोककर कृपाल बाबू बोले, 'हमारी हड़ताल...'

उन्हें छोड़कर प्रान बाबू अचकचाकर बोले, 'क्या कहते हो कृपाल बाबू, सुबह हमने अपनी आँखों से ही...'

'सुबह की बात ठीक है', कृपाल बाबू ने मुँह लटकाकर कहा, 'लेकिन भाई, बाद में लोग छुपकर रजिस्टर पर अपनी हाजिरी के दस्तखत बना आये हैं । इस समय भी दस्तखत बन रहे हैं । मुझे तो शाम को शंकर बाबू ने बताया कि ऐसा हो रहा है । मैंने जाकर देखा तो शंकर बाबू की बात ठीक निकली । क्या करता, मैं भी दस्तखत बनाकर अभी लौटा हूँ । भाई सोचा, पता नहीं तुमको मालूम है कि नहीं, सो चला आया तुम्हें बताने । साहब कहते थे, रात भर दस्तखत बनेंगे । भाई, तुम भी जाकर बना आओ ।'

सुनकर प्रान बाबू के दिल की धड़कन ही जैसे बंद हो गयी । उन्हें लगा कि अभी बैठ न गये तो गिर पड़ेंगे । वह माथे पर हाथ रखकर वहीं बैठ गये ।

'भाई, मुझे भी बड़ा अफसोस है ।' कृपाल बाबू ने उन्हें समझाते हुए कहा, 'लेकिन किया ही क्या जा सकता है ? जाओ...फिलहाल दस्तखत बना आओ, फिर देखेंगे...ठीक है न ?'

प्रान बाबू को जैसे कुछ भी सुनायी न दिया वह जवाब क्या देते ?

'मैंने अभी खाना नहीं खाया है, बच्चे इंतजार कर रहे हैं । तो मैं चलूं

भैरवप्रसाद गुप्त

जन्मतिथि : 7 जुलाई, 1918
जन्म स्थान : ग्राम सीवान कलाँ,
जिला बलिया (उ०प्र०

चर्चित कृतियाँ : उपन्यास

- ☐ शोले
- ☐ गंगा मैया
- ☐ अंतिम अध्याय
- ☐ कालिंदी
- ☐ एक जीनियस की प्रेमकथा

कहानी-संग्रह

- ☐ मोहब्बत की राहें
- ☐ बिगड़े हुए दिमाग
- ☐ महफिल
- ☐ आँखों का सवाल

नाटक

- ☐ चंदवरदायी

संप्रति : स्वतंत्र लेखन
अध्यक्ष : जनवादी लेखक संघ
संपर्कसूत्र : 1 एफ/1, बेनीगंज,
इलाहाबाद-211 016